



“संस्कृत व्याकरण को नागेशभट्ट का योगदान”

NĀGESAS CONTRIBUTION TO SANSKRIT GRAMMAR

‘अलीगढ़ मुस्लिम विश्व विद्यालय की एम० फिल०
उपाधि के लिए प्रस्तुत’

—शोध प्रबन्ध—

1987

निर्देशक
प्रो० सी० टी० केंघे

प्रस्तोता
श्रीओ३म् शर्मा भारद्वाज

संस्कृत विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्व विद्यालय
अलीगढ़
२०२००१



DS1137

प्राप्ताधिकम्

संस्कृत भाषा का व्याकरण भारतीय ज्ञान विज्ञान का ज्वलन्त उदाहरण रहा है। विश्व के सभी प्रमुख विद्वानों ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। महर्षि पाणिनि के उर्वरक मण्डितक में उद्भूत हुआ यह व्याकरण सभी वृत्त काव्यात्मक फार्मलि एवं मर्तुहरि, मट्टौपिहीनित तथा कौण्ड मट्ट और नागेश मट्ट वादि विद्वानों की देखरेख में संवर्धित हुआ जो आज भी सुषिप्त एवं पस्तविप्त ही रहा है और व्याकरणव्याख्याओं एवं अनुसंधितियों की आज भी अपनी शोचल शायी में बान्धनित कर रहा है।

संस्कृत व्याकरण एक ज्वलन्त विस्तृत विषय है। जो ज्ञान ज्ञान द्रष्टा भारतीय विद्वानों ने अपने महत्त्वपूर्ण योगदान में समृद्ध एवं विस्तृत बनाया है। नागेश मट्ट उनमें से ही उत्कृष्ट है। जो तीनों ज्ञान विद्वानों ने संस्कृत व्याकरण पर ग्रन्थ लिखे हैं किन्तु नागेश मट्ट ने ज्ञान ज्ञान संस्कृत व्याकरण पर लिखकर ही समृद्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में हमने नागेश मट्ट द्वारा संस्कृत व्याकरण की दिने की योगदान का सूचार्थन करने का प्रयास किया है। जो ग्रन्थ की सात अध्यायों में विस्तृत किया गया है। प्रथमाध्याय में नागेश मट्ट ने प्राचीन व्याकरण का ऐतिहासिक परिचय दिया है। संस्कृत व्याकरण शास्त्र का ऐतिहासिक काव्यमानुषार ज्ञान विद्वानों ने लिखा है। का: हमने जो

संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय दिया है वह इतिहास की प्रकृति परम्परा में कुछ भिन्न है। वह ऐतिहासिक विवरण कालानुक्रम में न देकर विषयक्रम के अनुसार दिया है। यह इसलिए कि नागेश भट्ट ने व्याकरण के प्रायः सभी शास्त्रों में कार्य किया है। नागेश जी के योगदान का मुख्यमाफा हमने कभी-किसी वर्ग विभाजन के अनुसार किया है। व्याकरण के निम्नलिखित चार विभाजन किये हैं -

- १- व्याकरण का ऐद्वैतिक युग (जटायुवादी की परम्परा)
- २- व्याकरण का प्रक्रिया युग
- ३- व्याकरण का दार्शनिक युग
- ४- व्याकरण के चार पाठ

वह ऐतिहासिक विवरण सभी वर्ग विभाजन पर आधारित है। व्याकरण की प्रत्येक परम्परा की नागेश के ग्रन्थों द्वारा मिली जाये योगदान की सुगमता में सम्मिलित के लिए वह विभाजन किया है।

एक विभाजन के प्रथम वर्ग के अन्तर्गत पाणिनि की जटायुवादी सत्वात्मक के पारिक्त एवं प्रायः के महाभाष्य की लिखा है। यह व्याकरण का ऐद्वैतिक युग कहा जाता है।

व्याकरण के प्रक्रिया युग के अन्तर्गत प्रक्रिया कीर्तनी , विद्वान् कीर्तनी , उपमादा, प्रक्रियापूर्णता आदि ग्रन्थों की परम्परा की लिखा गया है।

शब्दार्थों का दार्शनिक रीति में विचारविमर्श जिस परम्परा में किया गया है वही व्याकरण का दार्शनिक युग माना

जाता है। इस परम्परा में महुँहरि का वाक्यपदीय, कौण्डभट्ट का भूषण एवं नागेशभट्ट की मङ्गलारं प्रसुत ग्रन्थ हैं।

महर्षि पाणिनि तथा अन्य विद्वानों ने शब्दा-
नुत्पत्ति के कुछ पाठों का विधान किया है। ज्ञाः धातुपाठ, गणपाठ,
उणादिपाठ तथा परिभाषापाठ की व्याकरण में एक स्वतन्त्र परम्परा
प्राप्ति है।

उक्त चारों ही परम्पराओं में नागेश जी ने ग्रन्थ
लिखे हैं। तत्त्व परम्पराओं की एक नवीन विचारधारा नागेश जी ने प्रदान
की है।

प्रतीय अध्याय में नागेशभट्ट के जीवनवृत्त की
वर्णना की है। इस प्रकरण में नागेश जी के जीवन के सम्बन्धित अनेक विवेचनियों
की भी वर्णना की है। उनके प्रतिरिक्त नागेश की कृतियों के विषय में विचार
किया है। उनके अन्तर्गत कई समस्याओं की लेकर उनके व्यासम्भ सम्पादन
का प्रयास किया है।

अनेक चार अध्यायों में नागेश जी के प्रसुत ग्रन्थों
का परिचय दिया है। व्याकरणशास्त्र की तत्त्वशास्त्रों के लिए उन ग्रन्थों
की उपयोगिता पर विचार किया है। तृतीय अध्याय में व्याकरण की दार्श-
निक परम्परा में लिखे गये तीनों मङ्गलारं ग्रन्थों के विषय में विचार करते हुए
व्याकरण दर्शन के लिए उनके महत्त्व पर विचार किया है। व्याकरण की
दार्शनिक परम्परा की उन ग्रन्थों के मिलने वाले योगदान की स्पष्ट करने का
प्रयास किया है।

चतुर्थ अध्याय में प्रक्रिया व्याकरण के मुख्य ग्रन्थ लघुशब्देन्दुशेखर तथा बृहद्शब्देन्दुशेखर की चर्चा की है तथा प्रक्रिया व्याकरण में उभयशब्देन्दुशेखरों के महत्त्व का मूल्यमापन किया गया है।

महामहोपाध्याय नागेश जी ने परिभाषा पठ की भी अपनी पारंगत लेखनी का विषय बनाया है। पंचमाध्याय में परिभाषा-शब्देन्दुशेखर के विषय में विचार विमर्श किया है तथा विभिन्न पारिभाषिक ग्रन्थों में इसके महत्त्व की स्पष्ट किया है।

षष्ठाध्याय में महाभाष्य की व्याख्या प्रदीपदीपित के बारे में चर्चा की है।

उपरिनिर्दिष्ट क्षेत्र में ग्रन्थित यह लघु प्रबन्ध जिन विद्वज्जनों एवं गुरुजनों को अनुकम्पा तथा साहाय्य से पूर्णता की प्राप्ति हो सका है। उनके प्रति वाभार प्रकट करने का लीम स्वरण करके कृतघ्नता सेना दौल लेना स्वर्था अनुपयुक्त होगा।

ज्ज्ञाः स्वप्रथम उनके प्रति सभ्य वाभार व्यक्त करता हूँ। जिनकी कृपा एवं यथासमय दिये जाने वाले निर्देशों से यह कार्य पूर्ण हुआ है। सिद्धेशमुखी गुरुवर प्रोफेसर चिन्तामणि त्र्यम्बक शर्मा के परिपक्व निर्देशन में यह प्रबन्ध लिखा गया है ज्ज्ञाः वादरणीय गुरुवर के प्रति अदावन्त हृदय से वाभार प्रकट करता हूँ।

तदनन्तर में विभागीय गुरुजनों के प्रति सदा वाभारी रहूँगा जिनका सहयोग मुझे यथावसर मिलता रहा है। विशेष रूप से श्रेष्ठ गुरुवर श्री रामलराजेश्वर शर्मा के प्रति मेरे हृदय से वाभारी हूँ जिन्होंने यथासमय ग्रन्थ उपलब्ध कराकर मेरे ऊपर महती कृपा की है, और यथासमय सुझाव दिये हैं।

मौलाना बाजाद पुस्तकालय का मैं बाजीवन कर्णी रहूँगा जहाँ मैं मूल्य ग्रन्थों का अध्ययन किया। इस पुस्तकालय से ग्रन्थ उपलब्ध कराने में श्री शिवदत्त शर्मा एवं श्रीमती गौयल ने मुझे सहा-नीय सहयोग दिया। कतः उनके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ।

इस शोध कार्य के लिए सामग्री एकत्रित करने के लिए मुझे अलीगढ़ से बाहर कई स्थानों पर जाना पड़ा कतः तत्काल स्थानों के प्राधिकारियों के प्रति मैं आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। इस प्रसंग में मैं इलाहाबाद, वाराणसी, उज्जैन, इन्दौर, जयपुर एवं अजमेर आदि स्थानों से सामग्री एकत्रित की है।

इलाहाबाद में डा० विद्याधर धर्माधिकारी के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। डा० धर्माधिकारी के यहाँ जाकर मैं उनके शोध प्रबन्ध का आशीषान्त अध्ययन किया है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष एवं अन्य कर्मचारीगण धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने ग्रन्थालय में अध्ययन की अनुमति प्रदान की तथा अन्य उपलब्ध कराने में सहायता की।

गंगानाथ का प्राच्य विद्या शोध प्रतिष्ठान के अधिकारी वर्ग के प्रति मैं आभारी हूँ जिनसे मुझे परामर्श लाभ प्राप्त हुआ।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के तत्कालीन उपकुलपति श्री देवन्धर मिश्र जी के प्रति मैं विशेष रूप से आभार व्यक्त करता हूँ जिनके आदेश से मुझे सरस्वती भवन ग्रन्थालय में अध्ययन के लिए सुविधाएं प्राप्त हो सकीं।

वाराणसी के ही डा० तेजपाल शर्मा के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। डा० शर्मा से मैं अपनी विषय से सम्बन्धित चर्चा करके परामर्श लाभ प्राप्त किया। इसके पूर्व डा० शर्मा मेरे गुरु भी रहे हैं। मैं उनसे व्याकरण के प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन किया है।

उज्जैन के सिंधिया प्राच्य विद्या संशोधन मंदिर तथा राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के पुस्तकालय तथा राजस्थान प्राच्य विद्या शोध प्रतिष्ठान की क्लर शाखा के फटाधिकारियों का यह विशेष रूप से बाभारी हूँ जिन्होंने ग्रन्थ स्व पाण्डुलिपियों की उपलब्ध कराने में मेरी मदद की ।

श्रीमती त्रिपाठी के घर उनके व्यक्तिगत पुस्तकालय में मैं उनके दुर्लभ ग्रन्थों का अध्ययन किया है । कतः श्रीमती त्रिपाठी के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

डा० उमेश चन्द्र शर्मा ने इस कार्य में मुझे सराहनीय सहयोग प्रदान किया है । डा० शर्मा ने कई ग्रन्थ मुझे उपलब्ध कराए हैं तथा यथावसर सुझाव दिये हैं । कतः आदरणीय बन्धु के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ ।

वन्त में मैं अपने दीन्या गुरु आचार्य प्रवर श्री बाकिलाल त्रिवेदी जी के प्रति आदर स्वरूप आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी असीम कृपा से यह मन्दबुद्धि यह कार्य कर सका हूँ ।

श्री सांगवेद संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य तथा मेरे विद्या गुरु आचार्य श्री श्यामसुन्दर शर्मा के प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ जिनके चरणों में बैठकर मैं व्याकरण का अध्ययन किया है ।

श्री सांगवेद संस्कृत महाविद्यालय के ही पुस्तकालयाध्यक्ष श्री दिवाकर वाशिष्ठ के प्रति मैं आभारी हूँ । श्री वाशिष्ठ ने मुझे अध्ययन के लिए ग्रन्थ प्रदान करके मेरे कार्य की कुछ सुगम बना दिया ।

इस कर्मोन्मत्त जगत् में शब्द भी व्यर्थ के बिना नहीं रहता

है। "सर्वगुणाः काचनमाश्रयन्ति" वाली बात को गीचा जाय तो वार्धिक सहयोग के अभाव में यह कार्य भी सम्भवतः एक समय तक पूर्ण नहीं हो पाता। काः विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्राप्त वार्धिक सहायता के लिए मैं आयोग का आभारी हूँ।

आपके साथ साथ मेरे परिवार का मुझे पूर्ण सहयोग मिलता रहा है। काः मैं परिवारीजनों का आभार व्यक्त करना नहीं भूलूँगा।

यह लघु प्रबन्ध विद्वज्जनों की सेवा में सादर समर्पित है। प्रबन्ध के विषय में विद्वानों के सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

यदा किंचित्कालोऽहं द्विपं स्व मदान्धः सम्भवम्
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्य मयदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किंचित्किञ्चिद् बुध जन सदाशादवयक्तम् ,
तदाभूतोऽस्मीति ज्वरं स्व मदी मे व्यगतः ॥

गुरु पूर्णिमा

संवत् २०४४

११-७-१९८७

अलीगढ़

विदुषाभाष्यः

श्रीगुरुशिरः

पारदाजकुलोत्पन्नः श्रीजीशम् शर्मा

विषयसूची

	पृष्ठ
	1-7
प्रास्ताविकम्	
विषयसूची	8-11
शब्द संक्षेप	12-13
आमुखम्	14-21
	22-42
<u>प्रथम अध्याय</u>	
नागेश पूर्व संस्कृत व्याकरण का संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय	
<u>द्वितीय अध्याय</u>	43-71
(क) नागेशमठ का समय	45-49
(ख) जीवन वृत्ति	49-50
(ग) गुरु परम्परा	50-51
(घ) शिष्य परम्परा	51-55
(ङ०) कृतियाँ	55-71

तृतीय अध्याय

	पृष्ठ
	72-89
	73-74
(क) तीन मञ्जूषाएँ	74-76
(ख) पल्लव के प्रणीता नागेश भट्ट	76-77
(ग) वं० सि० म० के कुछ अपर फ्यायि	77-79
(घ) वं० सि० म० स्व रफोटवाद	79-83
(ङ०) तीनों मञ्जूषाओं का रचनाक्रम एवं रचनाकाल	83-87
(च) तीनों मञ्जूषा ग्रन्थों का प्रतिपाद्य	87-
(छ) नागेश प्रणीत वं० सि० म० से भिन्न वं० सि० म०	87-89
(ज) संस्कृत व्याकरण के दार्शनिक ग्रन्थों में वं० सि० म० का स्थान	

चतुर्थ अध्याय

	पृष्ठ
	90-109
	91-92
(क) बृहच्छब्देन्दुशेखर एवं लघुशब्देन्दुशेखर	92-94
(ख) बृहच्छब्देन्दुशेखर या शब्देन्दुशेखर	94-96
(ग) बृ० श० शै० एवं लघुशब्देन्दुशेखर में मूल अन्तर	96-98
(घ) उभयशब्देन्दुशेखरों का प्रणयन काल	98-99
(ङ०) बृ० श० शै० एवं जयकारण सि० म०	99-100
(च) बृ० श० शै० एवं महाभाष्यप्रदीपीयौत	100-101
(छ) बृ० श० शै० एवं परिभाषा-शब्देन्दुशेखर	101-102
(ज) बृ० श० शै० एवं लघुशब्दरत्न	

(भा) शब्दों की संरक्षा	102-105
(ब) शब्देन्दुशेखर की टीकाएं	105-107
(ट) सि० कां० की विभिन्न व्याख्याओं में शब्देन्दुशेखर का स्थान	107-109

पंचम अध्याय

110 - 127

(क) परिभाषा का लक्षण	111 - 112
(ख) व्याधिप्रणीत परिभाषाएं	112 - 114
(ग) पाणिनिप्रणीत परिभाषाएं	114 - 115
(घ) परिभाषापाठ के व्याख्याता हरदत्त	115 - 116
(ङ) पुरुषोत्तमसेन	116-117
(च) गोरक्ष	117-119
(छ) व्याकरण परिभाषाओं के सम्प्रदाय	119-120
(ज) परिभाषाशेखर का रचनाकाल	120-123
(झ) परिभाषाशेखर में व्याख्यात परिभाषाओं का क्रम एवं संस्था निर्धारण	123-125
(ञ) परिभाषाशेखर के तीन विभाग	125-127
(ट) विभिन्न परिभाषा ग्रन्थों में परिभाषाशेखर का स्थान	127

षष्ठः अध्यायः

128-142

(क) महाभाष्य की व्याख्यान	130 - 134
(ख) उपाति का रचनाकाल	134 - 135
(ग) स्वरूप एवं रचना	136
(घ) नागेश के अन्य ग्रन्थों में उपाति का महत्त्व	136-137
(ङ) महाभाष्य की जोड़ व्याख्याओं में उपाति का स्थान	137-139
(च) नागेश प्रणीत प्रत्याख्यान ग्रंथ	139-141
(छ) .. विषमपक्षी	141
(ज) .. जीरणिवादार्थ एवं जीरणा- विटिसूत्रार्थविचार	141-142

सप्तमः अध्यायः

143-151

उपनिषद्

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

152-162

शब्द-संग्रह

वै० सि० म०

वै० सि० ल० म०

वै० भू०

वै० भू० सा०

ल० म०

ल०श०शै०

लघुशैसर

ल०श०र०

मंजूणा

म०म०

बृ० ल०शै०

बृहच्छैसर

बृ०श०र०

बृहन्मंजूणा

गुरुमंजूणा

डेक्कन एण्ड० सो०

का०प्र० शु०

प०ल०म०

परि०शै०

वैयाकरणसिद्धान्त मंजूणा

वैयाकरणसिद्धान्तलघुमंजूणा

वैयाकरणभूषण-काण्डेष्ट

वैयाकरणभूषण सार ..

लघुमंजूणा

लघुशब्देन्दुशैसर

..

लघुशब्दरत्न

वैयाकरणसिद्धान्तमंजूणा

महाभलीपाध्याय

बृहच्छब्देन्दुशैसर

..

बृहच्छब्दरत्न

वैयाकरणसिद्धान्तमंजूणा

..

डेक्कन एण्ड० सो०

का०प्र० शु०

(सम्पादक परमलघुमंजूणा एवं वैयाकरणसिद्धमंजूणा)

परमलघुमंजूणा

परिभाषा-शैसर

सं० व्याख्याका इति० संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास

पि० काँ० सिद्धान्तकौमुदी

English

ABORI

**Annals of the Bhandarkar Oriental
Research Institute.**

वामुखम्

संस्कृत वाङ्मयानुरागियों के लिए महामहोपाध्याय नागेश भट्ट का नाम अपरिचित नहीं है। वैयाकरणकिसरी नागेश जीनेसंस्कृत वाङ्मय के विभिन्न विषयों पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। व्याकरणशास्त्र, दर्शन-शास्त्र, धर्मशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, कर्मकाण्ड एवं प्रसुत रूप से व्याकरणशास्त्र पर नागेश जी ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा के निष्पन्न पर परीक्षित करके जीक महत्वपूर्ण ग्रन्थ रत्नों का निर्माण किया है। यद्यपि नागेश जी ने बहुत विषयों पर विचार किया है किन्तु वैयाकरण के रूप में नागेशभट्ट की प्रसिद्धि मानी जाती है। सम्प्रति संस्कृत पाठशालाओं में नागेश भट्ट के ही जीक ग्रन्थों का पठन-पाठ ही रहा है। परम वैयाकरण नागेश जी ने अन्य व्याकरण-तर विषयों पर भी विचार करते समय प्रत्येक व्याकरणपरक विषयों की बड़ी रुचिपूर्वक एवं विस्तार से स्पष्ट किया है। उदाहरण के रूप में योगसूत्र के विभूतिवाद के सत्रहवें सूत्र की नागेशभट्टी व्याख्या देखी जा सकती है। वहाँ उन्होंने शब्दार्थ की वर्णन करते हुए स्कौट का सम्पूर्ण व्याकरणपरक स्पष्टीकरण दे दिया है। परन्तु संस्कृत व्याकरण के ती प्रायः सभी पन्नों का नागेश जी ने अध्ययन किया है और उसकी कठिनतम समस्याओं को लिया है एवं उनका समाधान स्वमतानुसार किया है। अतः इसके परिणामस्वरूप व्याकरण के १- सिद्धान्तपत्र, २- प्रक्रियापत्र ३- दार्शनिक पत्र एवं परिमाणपत्र

१- देखिए- "शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संस्कारस्तत्प्रविभागीयमात्सर्व-

भूतरुतज्ञानम् ।" योगसूत्रम् (भट्टीकीपत्रम्) पा० ३ सू० १७

पृ० १३२-१३३, चौसम्भा, वाराणसी, १९८२

पाठ इत्यादि पर नागेश जी के बहुमत ग्रन्थरत्न उपलब्ध हैं ।

कतः प्रस्तुत प्रबन्ध का अनुसन्धेय ' नागेश मट्ट का संस्कृत व्याकरण की योगदान ' यह है । वस्तुतः नागेश जी के कुछ ग्रन्थ पढ़ने के अन्तर उनकी गुरुता एवं विचक्षण विचार की शैली से प्रभावित होकर नागेश जी के साहित्य पर विशेष अध्ययन करने की प्रवृत्ति जाग्रत हुई । यद्यपि नागेश जी के ग्रन्थों पर अन्य विद्वानों ने भी कार्य किया है किन्तु वह परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता । नागेश जी के विषय में प्रायः निम्न विद्वानों ने कार्य किया है ।

सर्वप्रथम नागेश जी के शिष्य वैष्णव पायगुण्डे ने अपने गुरुजी के प्रायः सभी व्याकरण के ग्रन्थों पर व्याख्या लिखी है । वैष्णव पायगुण्डे ने निम्नलिखित ग्रन्थों का प्रणयन किया है^१ :

- १- कर्षसंग्रह
- २- कता- मन्त्रुणाव्याख्या
- ३- काशिका परिमानीन्दुव्याख्या
- ४- गदा
- ५- जिहस्थिमाला लघुसूक्तव्याख्या
- ६- छाया- भाष्यप्रदीपदीयात व्याख्या
- ७- परिमाणेश्वरीसर संग्रह
- ८- भक्तितरंगिणी

१- देखिए- टिप्पणी सं० ६ - भूमिका पृ० १६ , महामाध्य, निर्वाच्य-
सागरीय संस्करण, बम्बई , १९५१

- ६- प्रभा शब्दकोस्तुपटीका
 १०- भावप्रकाश शब्दार्त्न टीका
 ११- भूषण
 १२- र प्रत्याहारखण्डन
 १३- विवरण ब्रह्मव्यूणा टीका
 १४- वृद्धशब्दार्त्नशेखर
 १५- सर्वमंगला
 १६- हरिलोकचन्द्रिका

पायगुण्डे ने भी वस्तुतः अपनी गुरुजी की परम्परा का ही अनुसरण करते हुए उनके ग्रन्थों की व्याख्या ही की है अन्य तथ्यों के स्पष्टीकरण की वीर उन्होंने भी ध्यान दिया है। इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए मैरवमि वादि अन्य विद्वानों ने भी नागेश भट्ट के ग्रन्थों की व्याख्या लिखी है।

इस परम्परा से कुछ पुस्क होकर डा० पी०वी० काणे ने सर्वप्रथम वाधुनिक परम्परा के अनुसार नागेश भट्ट के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी दी है। डा० काणे ने अपनी विशद ग्रन्थ 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में नागेश जी के जीवन से सम्बन्धित तथा उनकी कृतियों इत्यादि के विषय में महत्वपूर्ण तथ्यों को उजागर किया है जिसके आधार पर कालान्तर में डा० एस० के० वैखण्कर तथा पं० युधिष्ठिर मीमांसक वादि इतिहासकारों ने भी

- १- हिन्दू वाक धर्मशास्त्र, वाख्यम १, मुद्रा, १९३० पृ० ४५३-४५६
 २- एस० के० वैखण्कर - सिस्टम्स वाक संस्कृत ग्रामर पृ० ४०-४१
 ३- युधिष्ठिर मीमांसक - सं० व्या० शा० का० इति० भाग १ पृ० ३६२, ४४८, ४६९ एवं भाग २ पृ० २५६, २८३, ३६६।

वफे वफे ग्रन्थों में नागेश भट्ट के विषय में जानकारी दी है। उक्त सभी विद्वानों के सर्वप्रथम प्रयास वफे में महत्वपूर्ण अवश्य हैं परन्तु परिपूर्ण नहीं हैं।

इसी परम्परा को और भी अग्रसर करते हुए डा० पी० कै० गोडे^१ तथा प्रो० कै० बी० व्यंकटराव आदि विद्वानों ने भी नागेश भट्ट एवं उनकी कृतियाँ इत्यादि पर विचार किया है। डा० गोडे ने वफे एक निबन्ध में नागेश भट्ट की कृतियों का कालक्रम निर्धारित करते हुए उनके ग्रन्थों के पारि-
पूर्ण पर विचार किया है।^२

प्रोफेसर व्यंकटर ने नागेश भट्ट के कुछ ग्रन्थों का सम्पादन किया है। उनमें विस्तृत प्रामाणिकता के साथ महत्वपूर्ण एवं गवेषणात्मक तथ्यों की प्रकाशित किया है। तथा स्वतन्त्र रूप से नागेश भट्ट के विषय में कुछ संकाजों को लेकर निबन्ध भी लिखे हैं। इन विद्वानों ने जो चर्चा की है उसका एक सीमित दायरा है जो नागेश जी के स्कन्देशीय पक्ष पर ही विचार करते हैं। प्रो० कै० बी० व्यंकटर ने मराठी भाषा में अद्वितीय महामाण्य के सप्तम भाग प्रस्तावना सङ्घ में नागेश भट्ट के सम्बन्ध में विस्तृत रूप में जानकारी दी है।^५

इसी क्रम में डा० एम० एस० भट्ट का नाम भी उल्लेख-

१- डा० पी० कै० गोडे - दी रिसेटिव ड्रोनोलोजी आफ़ सम वर्ल्स आफ़ नागेशभट्ट- पब्लिश्ड इन - स्टडीज़ इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री
वाल्थम ३ पु० २१२-२१०, पुना, १९५६

२- वही

३- द्रष्टव्य- परिभाषानुसार- कै० बी० व्यंकटर सम्पादित, पुना, १९६२

४- डेट एण्ड वायरशिप आफ़ दी शब्दरत्न सङ्घ बृहत्शब्दरत्न-कै० बी० व्यंकटर
इन A.B.O.R.I. वाल्थम ३२ पु० २५८-२६०, १९५९

५- महामाण्य (मराठी भाषानुवाद) सप्तम भाग (प्रस्तावना सङ्घ), डैक्कन
एजु० सो० पुना

नीय है। डा० भट्ट ने एक शोध निबन्ध में शब्दरत्न के प्रणीतृत्व पर विचार किया है^१। तथा लघुशब्दरत्न को नागेश द्वारा प्रणीत माना है। इसकी विस्तृत जानकारी के लिए डा० भट्ट का वह निबन्ध द्रष्टव्य है^२।

यहाँ हम मन्दन में वाराणसी का विद्वन्मण्डल भी अविवरणीय है। डा० कालिका प्रसाद शुक्ल का नाम इस प्रण में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डा० शुक्ल ने परमलघुमञ्जूषा का सम्पादन अपनी ज्योत्स्ना नामक विद्यत्तापूर्ण एवं गाम्भीर्य गुणोपेत टीका के साथ किया है^३। डा० शुक्ल ने बृहन्मञ्जूषा का सम्पादन सबसे पहले सन् १९७७ में किया है^४।

वाराणसी से ही डा० सीताराम शास्त्री ने नागेश भट्ट के बृहच्छन्देन्दुशेखर की मुद्रित रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का महान् कार्य किया है^५। तथा इस ग्रन्थ की भूमिका में आवश्यक बालीचनात्मक गाम्भीरी भी देकर इस विषय के कृतसन्धितसुबों को कृतार्थ किया है। सम्पादन एवं व्याख्यान की इस परम्परा में वाराणसी के तथा अन्य कौनों विद्वानों का नितान्त सहयोग है। विस्तारभिया के कारण इन ग्भी का नामोल्लेख हम यहाँ नहीं कर रहे हैं। नागेश भट्ट के दो ग्रन्थ विद्वन्मण्डल में सर्वाधिक चर्चा का विषय रहे हैं :

१- लघुशब्दरत्न

२- परिभाषेन्दुशेखर

१- जीयरशिप आफ दी लघुशब्दरत्न- पब्लिश्ड इन एच०डी० बैलंकर कमोमरीशन

वाल्शुम - पूना

२- वही

३- परमलघुमञ्जूषा, कालि० प्र० शु० द्वारा सम्पादित, बड़ौदा, १९६१

४- वें० सि० म०, का० प्र० शु० द्वारा सम्पादित, वाराणसी, १९७७

५- वृ० श० शै० सम्पादक डा० सीताराम शास्त्री, वाराणसी

६- वही, भूमिका

का: इनका सम्पादन विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न टीकाओं के साथ किया है तथा साथ में यथा लाभ्य बालीचनात्मक समस्याओं पर भी यत्र तत्र चर्चा की है। इस शृंखला में डा० कपिल देव शास्त्री का नाम मंजूणाओं के सम्पादन के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डा० शास्त्री जी ने परमलघुमंजूणा का सम्पादन स्वकृत हिन्दी टीका के साथ १९७५ में किया जो कि मंजूणा के कव्ये-ताओं के लिए सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध होता है। इस ग्रन्थ की भूमिका में डा० शास्त्री जी ने नागेश जी एवं उनके इतिवृत्त तथा कृतियों वादि के विषय में भी चर्चा की है।^२ इस परम्परा में एक और कार्य डा० कपिल देव शास्त्री ने किया है, वह है वै० सि० म० का मुद्रण विस्तृत बालीचना एवं तुलना के साथ। यह ग्रन्थ प्रकाशित करके डा० शास्त्री ने वै० सि० म० के अनुमन्त्रितों पर कृतज्ञ कृपा की है। पृहन्मंजूणा का अंग्रेजी में अनुवाद भी उन्होंने किया है।

विद्वान् न्यायाधीश श्री नारायण दाजीदा वाडेमाविकर ने परिभाषीसुरेश्वर का मराठी भाषा में अनुवाद किया है।^४ इस ग्रन्थ की भूमिका में श्री वाडेमाविकर ने नागेश भट्ट के जीवन सम्बन्धी कुछ विशिष्ट घटनाओं का उल्लेख किया है, जिनकी चर्चा हम इस प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में करेंगे।^५ श्री वाडेमाविकर ने नागेश जी की कृतियों के विषय में भी कुछ चर्चा

१- वै० सि० परमलघुमंजूणा सम्पादक एवं व्याख्याता- डा० कपिल देव शास्त्री
कुरुक्षेत्र, १९७५

२- वही, भूमिका

३- वै० सि० म० सम्पा० कपिलदेव शास्त्री, कुरुक्षेत्र, १९८५

४- परिभाषीसुरेश्वर के मराठी भाषान्तर- भाषान्तरकार ना० दा०
वाडेमाविकर, नागपुर, १९३६

५- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय दो पृ०

की हैं जिसका विचार हम इसी प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में नागेश जी की कृतियों के सन्दर्भ में करेंगे ।

पं० दुर्गा प्रसाद शास्त्री ने रसगंगाधर का संस्करण निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित कराया है । इसकी भूमिका में पं० दुर्गा प्रसाद शास्त्री ने नागेश मट्ट के विषय में जानकारी दी है ।

नागेश जी के जीवन में सम्बन्धित कुछ दस्त कथारें प्रचलित हैं जिनका उल्लेख श्री बी० केशकर ने अपने ग्रन्थ 'मराठी ज्ञान कोण' में किया है । यद्यपि यह ग्रन्थ हमें उपलब्ध नहीं हुआ किन्तु इसका निर्देश हमें डा० धर्माधिकारी के शोध प्रबन्ध में मिला है । नागेश मट्ट का जीवन परिचय एवं उनकी कृतियों के विषय में विचार करते हुए व्याकरण के लिए उनका योगदान दिखाते हुए डा० विद्याधर धर्माधिकारी ने हलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए लिखे गए अपने शोध प्रबन्ध में नागेश जी के जीवन-वृत्त एवं कृतियों पर प्रकाश डाला है । यह शोध प्रबन्ध हमने डा० धर्माधिकारी जी के यहाँ जाकर वाच्योपान्त पढ़ा है । यद्यपि डा० धर्माधिकारी ने पश्चिमपूर्वक अपने विषय को प्रस्तुत किया है, किन्तु इससे कुछ और वैशिष्ट्य हम अपने इस प्रबन्ध में रक्ता चाहते हैं । डा० धर्माधिकारी ने मुख्य रूप से परम लघुमूर्च्छना के कुछ प्रकरणों पर विशेष रूप से विचार करते हुए उसकी तुलना

१- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध , अध्याय दो पृ० १००

२- रसगंगाधर, सम्पा० दुर्गा प्रसाद , निर्णय सागर, बम्बई , १९३६

३- नागेश : लिख साहसक, ... वर्षों एण्ड काट्टीव्यूशन टू संस्कृत ग्रामर

(शोध प्रबन्ध) डा० वि० धर्माधिकारी , हलाहाबाद वि०वि०, १९६६

४- नागेश- उनका जीवन, कृतियाँ एवं संस्कृत व्याकरण की योगदान

(शोध प्रबन्ध) डा० वि० धर्माधिकारी , हलाहाबाद वि०वि०, १९६६

सधुर्मूर्च्छा से सर्व कौण्ड मट्ट के वें० मू० के साथ करते हुए नागेश जी का व्याकरण की योगदान दिताया है । किन्तु हम इस प्रबन्ध में नागेश जी के सभी प्रसुत ग्रन्थों पर समीप में विचार करते हुए इस ग्रन्थ से व्याकरण की मिलने वाले योगदान का सम्बन्ध दिलाने का प्रयास करेंगे । तथा एक बार वंशिष्ट्य हम इस प्रबन्ध में यह रसना चाहते हैं कि नागेश से पूर्व संस्कृत व्याकरण किस स्तर पर पहुँच चुका था तथा नागेश जी ने किन परिस्थितियों में अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया यह स्पष्ट करने के लिए हमने प्रथम अध्याय में व्याकरण का ऐतिहासिक परिचय एक नये ढंग से प्रस्तुत किया है ।^१

प्रस्तुत प्रबन्ध में हम नागेश मट्ट का संस्कृत व्याकरण की योगदान दिलाने के लिए उनके प्रमुक्तम ग्रन्थों का संक्षिप्त मूल्यांकन करते हुए व्याकरण की उनकी देन क्या है ? यह वशनि का प्रयास कर रहे हैं न कि उनके ग्रन्थों की समीक्षा कर रहे हैं । विद्वानों की समीक्षा के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध सादर है ।

प्रथम अध्याय

संस्कृत व्याकरणशास्त्र का यह त्व सर्व प्राचीनता इस शास्त्र की वेदांग मुख्यता से ही प्रमाणित होती है। समस्त भारतीय ज्ञान की निधि वेद ही है, और वेदाध्ययन के लिए व्याकरण का ज्ञान परमावश्यक है। वेद के उदात्त अनुदात्त, स्वरित वादि स्वरों तथा प्रकृति प्रत्यय वादि का ज्ञान व्याकरण से ही होता है। स्वरों से ब्रह्म मन्त्र यजमान स्व जाचार्य दोनों के लिए ही अनिष्टकारक होते हैं। अतः स्वर वादि के सम्यग्ज्ञान के लिए व्याकरण का ज्ञान होना अनिवार्य होता है। क्योंकि व्याकरण के द्वारा ही शब्दों के साधुत्व और असाधुत्व का ज्ञान होता है। इसीलिए महाभाष्यकार ने भी व्याकरण के अध्ययन का मुख्य प्रयोजन वेदों की रक्षा करना बताया है।

१- तुलना कीजिए-

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स्वाग्वजो यजमानं स्तिरित यवेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥ इति ॥

दृष्टव्यं दान्वा प्रयुक्तमहीत्यध्ययं व्याकरणम् ।

- महाभाष्य, पं. पञ्चाङ्गिक, निर्णयसागरीय संस्करण,

नवम्बर्, प्रथम सप्त, १६५१, पृ० ३०

२- तुलना कीजिए-

व्याध्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते साधुम्योऽसाधुम्यो विविच्य

विविच्य साधवः ध्रियन्ते शब्दाः येन, तद्व्याकरणम् ॥

३- देखिए- रक्षाध्वेदानामध्ययं व्याकरणम् । लोपागमवर्णविकारलो हि

सम्यग्धेदान्परिपालयिष्यतीति ॥

- महाभाष्य पं. पञ्चाङ्गिक, निर्ण० पृ० २०

वस्तुतः वर्तमान काल में संस्कृत व्याकरण के नाम से पाणिनीय व्याकरण की और ही जनसाधारण का ध्यान जाता है, और वह इसलिए भी कि सम्प्रति पाणिनीय व्याकरण का ही डिण्डिमघोष सर्वत्र ही रहा है। यद्यपि पाणिनीय व्याकरण से पूर्व भी व्याकरण की सत्ता थी। तथा पाणिनि से पूर्व भी व्याकरण के बिन्होंने अपने मत प्रकट किए थे। व्याकरण के पहले प्राचीन निर्देश कवेद में मिलते हैं जिनका सूक्ति महाभाष्यकार ने किया है। तथा एस० कै० वेल्सल्लर ने भी अपनी जहाँ अपने ग्रन्थ " सिस्टम ऑफ़ संस्कृत ग्रामर " में की है।

वैदिक संज्ञितार्थों के बाद ब्राह्मण ग्रन्थों में भी व्याकरण की चर्चा की गई है^३। तथा प्रातिशाख्यों में भी स्पष्ट रूप से व्याकरण सम्बन्धी विचार किया है^४। वैदिक व्याकरण से ही सम्बन्धित यास्काचार्य ने भी वैदिक शब्दों की निरुक्तियों पर आधारित निरुक्त की रचना की है। जो पाणिनि से प्राचीन माने जाते हैं।

१- द्रष्टव्य- महाभाष्य परंपराविहृत (निर्णयसागरीय संस्करण) नवावधिक
प्रथम भाग , १६५१, पृ० ४०, ४२, ४३, ४४

ये मन्त्र द्रष्टव्य हैं- (चत्वारि रुपाः) (क्र० ४। पृ० ३)

(चत्वारिंशदपरिमिताष्टानि (क्र० १।१६४।४५)

(इत त्चः परम्) (सम्पत्तिवित्तना)

२- द्रष्टव्य- एस०के० बैल्लार- सिस्टम आफ संस्कृत ग्रामर पृ० २-३

3- .. go 3

8-11-50

हमके अनन्तर वैदिक व्याकरणकेवतिरिक्त लौकिक संस्कृत के व्याकरण के प्रवक्ताओं ने व्याकरण का प्रवचन किया है जिनका पाणिनि पूर्व भावित्व निर्विवाद स्वीकृत है। पाणिनि पूर्व व्याकरणां की वस्तुतः दो भागों में विभक्त करके विद्वानों ने देखा है। लगभग दस वैयाकरणाचार्यों के नाम पाणिनि की अष्टाध्यायी में ही मिलते हैं। इन वाचार्यों का पाणिनि के द्वारा उल्लेख किए जाने से पाणिनि पूर्व भावित्व सिद्ध होता है। दूसरी श्रेणी में पाणिनीयाष्टक में अनुत्तिष्ठित वाचार्यों की चर्चा की है। जिनका पाणिनि से पूर्ववर्तित्व अन्य प्रमाणों से सिद्ध होता है^२। व्याकरणशास्त्र के इतिहासकार युधिष्ठिर मीमांसक ने इन वाचार्यों की संख्या सोलह बतायी है।

१- द्रष्टव्य- अष्टाध्यायी- निम्न सूत्र

- (१) शाकल्य (१-१-१६) २- काश्यप (१-२-२५)
 (३) शाकल्य (३-४-१११) ४- तैत्तिरीय (५-४-११२)
 (५) आपति (६-१-८६) ६- स्फोटक (६-१-१२३)
 (७) चाप्यमण (६-१-१३०) ८- गाल (७-१-७४)
 (९) भार्गव (७-२-६३) १०- गार्ग्य (८-३-२०)

२- देखिए- युधिष्ठिर मीमांसक , संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास भाग एक , जयपुर , २०२० वि० सं० पृ० १३३-१७३

३- देखिए- वही , पृ० ७३-१३२

युधिष्ठिर मीमांसक ने जिन सोलह वाचार्यों के नाम दिए वे इस प्रकार हैं -

शिव , वृहस्पति , इन्द्र , वायु , भार्गव , भार्गव ,
 पाण्डुरसिन्धु , चरायण , काशकल शन्तनु , वैयाग्रपथ ,
 माध्यन्दिनि , रांदि , शान्ति , गौतम , व्याडि ।

उपसृत प्रमाणों के होते हुए यह कहना तो उचित नहीं होगा कि पाणिनि ही व्याकरण के जन्मदाता थे । जपि पाणिनि ने व्याकरण का समुद्धरण या विस्तार किया वह स्वयं उक्ति है । पाणिनि से पूर्व व्याकरण का कोई सम्पूर्ण ग्रन्थ नहीं उपलब्ध होता है । खोलिए कदाचित् यह रहा होगा कि प्राचीन व्याकरण पाणिनि से पूर्व अध्ययन एवं अध्यापन के व्यवहार में न होने के कारण लुप्त प्रायः होता जा रहा था जिसका समुद्धरण महर्षि पाणिनि ने किया । कुछ भी हो वाच तो अध्ययन- अध्यापन इत्यादि के व्यवहार में पाणिनीय व्याकरण का ही सर्वत्र प्रचलन हो रहा है । हमारे प्रबन्ध का अभिप्रेत पाणिनीय परंपरा के ही परम वैयाकरण " नागेश भट्ट का संस्कृत व्याकरण की योगदान" विषयक विचार करना है । इनसे पूर्व कि नागेश भट्ट के कार्यों पर विचार किया जाय, नागेश भट्ट से पूर्व व्याकरण की स्थिति पर ऐतिह्यपरक विचार करना आवश्यक है ।

पाणिनीय व्याकरण का मूल आधार पाणिनि के सूत्र हैं । बाठ अध्यायों में निबद्ध इन सूत्रों को पाणिनी^यश्रुतक या अष्टाध्यायी के नाम से जाना जाता है । इन सूत्रों की न्यूनता की परिपूर्ति करते हुए कात्यायन ने वार्तिकों का निर्माण किया । जिनमें सूत्रोक्त तथ्यों का स्पष्टीकरण किया है तथा सूत्रानुक्त तथ्यों का विधान किया है । प्रत्येक वार्तिक किसी न किसी सूत्र से सम्बद्ध है । परन्तु कहीं भी सूत्र एवं वार्तिकों का एकत्र संग्रह नहीं मिलता । भगवान् फाजलि ने समस्त वार्तिकों का अध्ययन करके उन्हें क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया है तथा व्याख्यात्मक शैली में स्पष्टीकरण देते हुए महाभाष्य का निर्माण किया है । इसी शृंखला में फाजलि से पूर्व स्व कात्यायन के बाद व्याडि ने अष्टाध्यायी का व्याख्यान रूप महत्

१- महाभाष्य के नवमोक्त प्रथम भाग की प्रस्तावना पृ० १०

२- वही , पृ० १०

परिभाषात्मक एवं लघुश्लोकात्मक 'संग्रह' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। यह ग्रन्थ बाज तौ उपलब्ध है ही नहीं। किन्तु नागेशभट्ट वादि को भी यह ग्रन्थ प्राप्त नहीं था^१। किन्तु जहाँ कहीं एतदर्थ ग्रन्थों से उनके उद्धरण प्राप्त हुए हैं उनको एकत्र करके युधिष्ठिर मीमांसक^२ जी ने अपने ग्रन्थ में प्रकाशित किया है।

पाणिनीय व्याकरण का यह प्रथम चरण कहा जा सकता है, जिसका आरम्भ पाणिनीयाष्टक से होता है तथा समाप्त महाभाष्य के साथ होता है। वस्तुतः यह कहना सर्वथा उचित होगा कि पाणिनीय व्याकरण की परिपूर्णता सूत्र, वार्तिक एवं भाष्य इन तीनों के मिलने से होती है। यहाँ व्याप्ति का नाम कदाचित् छलित नहीं लिया गया कि उनका ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था। किन्तु पाणिनीय व्याकरण की पूर्णता के लिए कात्यायन एवं फाजलि^३ को भी पूरा श्रेय जाता है और छलित पाणिनीय व्याकरण का त्रिमुनि व्याकरण अपर फर्याय बनकर रह गया है।

पाणिनीय व्याकरण का द्वितीय आयाम इस परम्परा के व्याख्यात्मक या ऐद्वान्तिक पक्ष से आरम्भ होता है। जिसका आरम्भ भगवान् फाजलि प्रणीत महाभाष्य की व्याख्याओं से होता

१- महाभाष्य के नवविंशत्य प्रथम भाग की प्रस्तावना पृ० १० पर यह

वाक्य- "एष व ग्रन्थो नागेशादिभिरपि नोपलब्धः।"

२- युधिष्ठिर मीमांसक - संस्कृत व्याकरण 'शास्त्रि' का इतिहास,

जयमेर, २०२० वि० सं० पृ० २७३-२७६

३- तुलना कीजिए- मुनित्रयं नमस्कृत्य-----।

- सिद्धान्तकौमुदी (मंगलाचरण)

है। यद्यपि व्याख्यात्मक शैली का आरम्भ तो महाभाष्य में ही हो गया है। या फिर व्याडि कृत 'संग्रह' की शैली भी व्याख्यात्मक ही थी। किन्तु इस परम्परा का विकास महाभाष्य की व्याख्याओं में ही होता है। महाभाष्य के व्याख्याताओं का स्वयं उनकी प्रमुख व्याख्याओं का परिचय युधिष्ठिर मीमांसक ने प्रयासपूर्वक दिया है^१। भर्तृहरि से लेकर गोपाल कृष्ण शास्त्री तक कटारह व्याख्याताओं का उल्लेख नामपूर्वक किया है^२। तथा कुछ ज्ञात व्याख्याकारों की उपलब्ध व्याख्याओं की भी चर्चा की है। महाभाष्य के व्याख्याकारों के विषय की चर्चा करते समय मीमांसक जो ने भर्तृहरि को केन्द्रबिन्दु मान कर विचार किया है। भर्तृहरि की उपलब्ध व्याख्या के अनुसार उसमें बहुत से स्थलों पर 'अन्ये', 'अपरे', 'कैचित्' इत्यादि शब्दों के प्रयोग के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि भर्तृहरि ने पूर्व महाभाष्य की अन्य व्याख्याएँ ही चुकी थीं^३। किन्तु वाच वे उपलब्ध नहीं हैं। भर्तृहरि की 'महाभाष्य दीपिका' भी सम्पूर्ण उपलब्ध नहीं है। इस विषय पर विद्वानों में कुछ मतभेद भी मिलता है। कुछ लोग महाभाष्यदीपिका को मात्र तीन^{पाद} तक ही लिखी गयी मानते हैं। उनके अनुसार भर्तृहरि में केवल प्रथमाध्याय के तीन पादों तक ही व्याख्या लिखी थी। किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार इस प्रकार के स्थित मिलते हैं कि भर्तृहरि ने सम्पूर्ण महाभाष्य की व्याख्या की थी जो वाच उपलब्ध नहीं है। स्वयं मीमांसक जो का भी यही मत है कि भर्तृहरि ने सम्पूर्ण महाभाष्य की

१- देखिए- युधिष्ठिर मीमांसक- संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास ,

जयमेर, २०२०, वि० ० , पृ० ३३८-३८६

२- वही

३- तुलना कीजिए- वही , पृ० ३६२

व्याख्या की थी। किन्तु बाज यह प्रथमाध्याय तक भी पूर्ण नहीं मिलती है। इस विषय में विस्तार से जहाँ मीमांसिक जी ने की है। का: यहाँ उसका पिष्टपेषण करना उचित नहीं होगा।

भट्टहरि कृत व्याख्या के अतिरिक्त सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण एवं पठन-पाठन के व्यवहार में प्रचलित 'प्रदीप' नाम्नी टीका कैयट ने लिखी है। इस व्याख्या का महत्त्व इसी बात से स्पष्ट होजाता है कि बाज पठन-पाठन में यदि कोई महाभाष्य टीका प्रयोग की जा रही है तो वह यही प्रदीप टीका ही है। इस टीका के महत्त्व की पुष्ट करने के लिए दूसरा प्रमाण है इस प्रदीप टीका की व्याख्यान। प्रदीप टीका पर अनेकों व्याख्यान लिखे गये हैं जिनमें नागेश भट्ट की 'उद्गीत' नाम्नी टीका का स्थान सर्वोपरि है। मीमांसिक जी ने प्रदीप के बादह टीकाकारों का नाम निर्देश पूर्वक उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त महाभाष्य की अन्य अनेक व्याख्यान हैं जो पठन-पाठन में प्रायः प्रचलित नहीं हैं। वाधुनिक युग में भी महाभाष्य की हिन्दी भाषा में अनेक व्याख्यान हुए हैं जिनमें पं० मीमांसिक जी की व्याख्या का स्थान मुख्यतम है।

महाभाष्य एवं महाभाष्य की व्याख्याओं के अतिरिक्त भी षष्ठाध्यायी की व्याख्यान लिखी गयीं जिनमें जयादित्य एवं वामन की 'काशिका' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। काशिका है अतिरिक्त षष्ठाध्यायी की अन्य वृत्तियाँ भी लिखी गयी। भट्टोजिदीक्षित का शब्दकान्तुम

१- युधि० मीमा० - व्या० शा० का इति० , जयमेर, २०२० वि०

पृ० ३५३-३५५

२- दैसिए- वही , पृ० ३८७-३८७

भी पाणिनीयाष्टक की ही व्याख्या है। जो आज सम्पूर्ण उपलब्ध नहीं होता। पं० मीमांसक जी ने लगभग ३६ (कुत्तीम) वृत्तिकारों एवं उनकी वृत्तियों की सूचना नाम निर्देशपूर्वक दी है^१। तथा^२ जेक वृत्तियों की सूचना उन्होंने दी है जिन्हें ज्ञात कर्तुं कताया है^३। इन वृत्ति ग्रन्थों की भी व्याख्यान हुए हैं जिनमें काशिकावृत्ति की व्याख्यान सभी अधिक हुए हैं। शब्दकोशुम की भी जेक विद्वानों ने व्याख्यान लिखी है, जिनमें कुछ उपलब्ध हैं और कुछ नहीं। डा० एस० के० बेल्सकर ने पाणिनीय व्याकरण के द्वितीय सम्प्रदाय का अन्त कंथ की प्रदीप व्याख्या से माना है^३। किन्तु काल्छम की दृष्टि से भिन्न दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो यह सभी पाणिनीय व्याकरण का व्याख्यायण या व्याख्यात्मक सम्प्रदाय कहा जा सकता है। पाणिनीय व्याकरण की व्याख्यात्मक इस परम्परा में नागेश भट्ट के दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं जिनमें महाभाष्य प्रदीपद्वय का महत्त्व स्पष्ट ही है। दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है शब्दकोशुम व्याख्या 'विणमपदी'।

पाणिनीय व्याकरण की तीसरी परम्परा में हम इस व्याकरण के प्रक्रिया पत्र को मानकर इसकी चर्चा करते हैं। इस प्रक्रियापत्र में सूत्र एवं वार्तिकों से सिद्ध होने वाले प्रयोगों एवं शब्दों की उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हुए सूत्रों तथा वार्तिकों के कार्यों को स्पष्ट किया है। पाणिनीय व्याकरण के मुख्य प्रक्रिया ग्रन्थ हैं- रामचन्द्रविरचित प्रक्रिया कांशुदी^४, भट्टोजिदीक्षित प्रणीत 'सिद्धान्तकांशुदी', सिद्धान्त-

१- युधिष्ठिर मीमांसक- सं० व्या० शा० का० इति० भाग १

अथर्व, २०२० वि० सं० पृ० ४०३-४६०

२- वही, पृ० ४६१-४६२

३- एस० के० बेल्सकर - सिस्टम्स आफ् संस्कृत ग्रामर पृ० ३४-३५

कौमुदी का ही संश्लेषीकरण करते हुए वरदराजाचार्य ने 'मध्यमिद्वान्त-कौमुदी' 'स्व' 'लघुमिद्वान्त कौमुदी' का निर्माण किया।

प्रक्रियाक्रम के द्वारा पाणिनीय व्याकरण में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इस परम्परा के प्रारम्भ से पूर्व व्याकरण का अध्ययन वृष्टाध्यायी के क्रम से ही रहा था। प्रक्रियाक्रम में इस वृष्टाध्यायी के क्रम से हटकर प्रकरण के अनुसार सूत्रों की व्याख्या सौदाहरण दी गयी है। जैसा कि वृष्टाध्यायी में सूत्रों का क्रम प्रकरण के अनुसार नहीं दिया गया है। यथा- वृष्टाध्यायी में एमास प्रकरण से सम्बन्धित सूत्रों का उल्लेख द्वितीय अध्याय में किया गया है किन्तु समासान्त प्रत्ययों का निर्देश पंचमाध्याय में किया है। अतः प्रक्रिया ग्रन्थों में प्रत्येक विषय को एक साथ ही प्रकरणबद्ध करके दिया गया है।

पाणिनीय व्याकरण के प्रक्रियासूत्र का प्रारम्भ यद्यपि रामवन्द की प्रक्रिया कौमुदी से पूर्व ही हो चुका था। प्रक्रिया कौमुदी का काल पं० मीमांसक स्व० डा० बल्लेस्वर के अनुसार ख्रिस्त की पन्द्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना है। किन्तु पं० मीमांसक जी ने पाणिनीय व्याकरण के प्रक्रियाग्रन्थकारों का परिचय देते हुए धर्मकीर्ति के 'रपावतार' नामक ग्रन्थ को पाणिनीय व्याकरण का एक प्राचीन प्रक्रियाग्रन्थ माना है। तथा धर्मकीर्ति का काल उन्होंने ११४० वि० सं० के लगभग माना है। इसके अति-

- १- बुधिमिष्ठर मीमांसक- सं० व्या० शा० का इतिहास भाग १, जयमेर, २०२० वि० सं० पृ० ४८४
- २- स्व० डा० बल्लेस्वर- गिस्टमस वाफ संस्कृत ग्रामर पृ० ३७
- ३- बुधिमिष्ठर मीमांसक- सं० व्या० शा० का इतिहास भाग १ पृ० ४८१

रिक्त कहें अन्य प्रक्रियाग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों के नाम उल्लिखित किए हैं जिनका समय प्रक्रियाकौमुदी से प्राचीन है^१। कहने का तात्पर्य यह है कि पाणिनीय व्याकरण के प्रक्रिया युग का आरम्भ ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में ही हो चुका था। किन्तु इस परम्परा का विकास प्रक्रिया कौमुदी से ही हुआ। और धीरे धीरे वाङ्मयायी क्रम से अध्ययन एवं अध्यापन की परम्परा लुप्तप्राय हो गयी और प्रक्रियाक्रम का ही सर्वत्र प्रचलन होगया।

वस्तुतः प्रक्रिया व्याकरण की परम्परा का जन्म पाणिनीय व्याकरण से कुछ भिन्न रूप में हुआ था। पाणिनीय व्याकरण के उत्तरकालीन कुछ सम्प्रदाय कातन्त्र एवं चान्द्र वादि बने। जो प्रक्रियाक्रम पर आधारित थे। प्रक्रियाक्रम से अध्ययन क्योंकि कुछ सुगम था इसलिए इस तरफ लोगों की रुचि बढ़ गयी एवं तदनुसार पाणिनीय व्याकरण पर भी प्रक्रिया ग्रन्थों का निर्माण होने लगा। प्रक्रिया कौमुदी के अन्तर इस परंपरा में भट्टोजिदीनित ने सिद्धान्तकौमुदी का निर्माण किया। यह प्रक्रियाग्रन्थों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। आज भी पठन पाठन में इसका ही प्रचलन हो रहा है। सिद्धान्त कौमुदी की अनेक महत्त्वपूर्ण व्याख्यान इस ग्रन्थ के महत्त्व को प्रमाणित करती हैं। स्वयं भट्टोजिदीनित ने इस ग्रन्थ पर स्वोक्त टीका लिखी है जो प्रादुर्भावना नाम से प्रसिद्ध है। इसी का संक्षेप करते हुए स्वयं भट्टोजिदीनित ने वाल्मनोरमा नाम्नी टीका भी लिखी है। ये दोनों ही टीकारं आज मुद्रित रूप में उपलब्ध हैं। सिद्धान्तकौमुदीके अनेक टीकाओं में मुख्य स्थान पर विराजमान शब्देन्दुशेखर नाम्नी टीका महामहोपाध्याय नागेशभट्ट ने लिखी है जिसके दो संस्करण बृहत् एवं लघु नाम से हमें उपलब्ध हैं।

१- युधि०मी० सं० व्या० शा० का इतिहास भाग १ पृ० ४८२-४८३

इनके वतिरिक्त अन्य जोके टीकारं संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में लिखी गयी हैं। विस्तारमय है उन सबके नामोल्लेख हम यहाँ नहीं कर रहे हैं। भट्टोजिदी-
दीप्ति की खोजस टीका प्रादुर्भावा की व्याख्या शब्दार्त्न नाम है
प्रसिद्ध है जो दो संकरणाँ में है -

१- वृद्धचक्षुर्त्न एवं

२- लघुचक्षुर्त्न

इनके प्रणीता के विषय में कुछ लोग भट्टोजिदीप्ति के पाँच एवं
नागेशभट्ट के गुरु हरिदीप्ति की इनका प्रणीता मानते हैं। किन्तु कुछ
लोग इनकी नागेशभट्ट प्रणीत कहते हैं। इनका मत है कि नागेशभट्ट ने
इनकी रचना की एवं अपने गुरु के सम्मानार्थ गुरुजी के नाम से प्रकाशित
कर दी। इस मन्दर्भ में हम अगले अध्याय में विस्तार से चर्चा करेंगे।

प्रक्रिया व्याकरण की परम्परा में सिद्धान्तकौमुदी
के वतिरिक्त रूपमाता एवं प्रक्रियार्त्न, और प्रक्रियासर्वस्व इत्यादि कई ग्रंथ
लिखे गए। जिनका क्रमिक वर्णन पं० मीमांसक जी ने अपने ग्रन्थ में दिया है।

पाणिनीय व्याकरण का सैद्धान्तिक एवं प्रक्रिया
पन्ना से भिन्न एक और पन्ना है व्याकरण का दार्शनिक पन्ना " शब्दब्रह्मणि
निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति " इस श्रुति को आधार करके कुछ वैयाकरणों
ने व्याकरण के दार्शनिक पन्ना पर भी विचार किया है। व्याकरण की जो
दार्शनिक परम्परा है वह मुख्य रूप से शब्दार्थ के सम्बन्ध में उनकी नित्यता
व्यवस्था अनित्यता पर विचार करती है। अतः शब्द-दर्शन की परम्परा पाणिनि
से भी प्राचीन है इनमें किञ्चित्मात्र भी सन्देह नहीं है। मुख्य रूप से हम यास्क-

चारों का नाम उद्धृत कर रखी है जिन्होंने पाणिनि से पूर्व ही शब्द के दार्शनिक पक्ष पर विचार किया है। पाणिनीय परम्परा में वार्तिककार ने भी “सिद्धेशब्दार्थं सम्बन्धी” जत्यादि वार्तिकों के द्वारा व्याकरण की दार्शनिकता का विचार किया है। किन्तु इस परम्परा में अगर स्फुट रूप से व्याकरण दर्शन सम्बन्धित चर्चा किसी ने की है तो वह फाजलि ने महाभाष्य में की है। महाभाष्य इस सन्दर्भ में हमारे लिए वाक्य ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध होता है। महाभाष्यमें एक स्थलों पर प्रकीर्ण रूप से इस प्रकार की चर्चा मिलती है।

महाभाष्य से ही प्रेरित होकर स्व' उसमें प्रकीर्ण चर्चों को संगृहीत करके परम्पराव्याकरण भर्तृहरि ने व्याकरण दर्शन पर आधारित स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थ का निर्माण किया जो वाक्यपदीय नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ तीन काण्डों में विभक्त है। ब्रह्माण्ड, आगमकाण्ड एवं प्रकीर्णकाण्ड। व्याकरण दर्शन पर स्वतन्त्र रूप से क्याचित् यह पहला ग्रन्थ है। वाक्यपदीय पर अनेक विद्वानों ने टीकाएँ लिखी हैं। प्रथम दो काण्डों पर भर्तृहरि ने स्वयं ही टीका लिखी है तथा इसके अन्य प्रमुख टीकाकारों में हेला-राज, पुण्यराज और कृष्णभट्ट के नाम उल्लेखनीय हैं। इस विषयकी विशेष जानकारी पं० मीमांसा जो ने दी है।

भर्तृहरि के अतिरिक्त व्याकरण दर्शन पर अन्य विद्वानों ने भी ग्रन्थ लिखे हैं जिनके विषय में हम क्रमशः विचार करेंगे। इस परम्परा के मुख्य व्याकरण हैं -

१- मण्डनमिह

२- मरुतमिह

१- युधि० मी० - पं० व्याकरण शास्त्र का इतिहास , द्वितीय भाग ,

पृ० ३४८-३५६

३- काण्डभट्ट

४- अन्य वैयाकरण

स्फोट पर मण्डनमिश्र ने एक प्रांठ ग्रन्थ की रचना की है जो "स्फोटसिद्धि" के नाम से प्रसिद्ध है। इस्तीस कारिकाओं के इस ग्रन्थ की मण्डनमिश्र ने खोजश टीका भी लिखी है। मण्डनमिश्र मूल रूप से मीमांसक थे। कुमारिल भट्ट के शिष्य मण्डनमिश्र के पाण्डित्य का प्रमाण उनके घर के कुछ कारिकाओं से मिलता था। जिनमें स्वतः प्रामाण्य स्व परतः प्रामाण्य के विषय में विवाद होता रहता था^१। मण्डनमिश्र प्रणीत स्फोटसिद्धि की टीकारं भी हुई हैं जिनका परिचय मीमांसक जी ने दिया है^२।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक जी ने भारतमिश्र विरचित स्फोटसिद्धि की सूचना दी है^३। जिसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रम से सन् १९२७ में हो चुका है। भारतमिश्र के विषय में उनके जीवन वृत्त इत्यादि से सम्बन्धित जानकारी कहीं उपलब्ध नहीं होती है।

व्याकरण दर्शन के व्याख्याताओं या विचारकों में काण्डभट्ट का नाम मुख्यतः है। ईसा की सौलखी शताब्दी के वैयाकरण काण्डभट्ट ने "वैयाकरणभूषण" नामक ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ आज भी मुद्रित रूप में उपलब्ध तो नहीं^४ है किन्तु वाराणसी के सरस्वती भवन ग्रन्थालय में इसका हस्ताक्षर विद्यमान है। यह ग्रन्थ सम्भवतः मीमांसक जी

१- द्रष्टव्य- स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीरणिना यत्र गिरं गिरन्ति ।

कारस्थलीढा तरुसन्निपाते जानीहि तन्मण्डनमिश्र धाम ॥

- शंकरदिग्विजय

२- युधि० मी० - सं० व्याख्या० का इति० भाग २ पृ० ३५८-३६०

३- वही , पृ० ३६०-३६२

४- द्रष्टव्य- सरस्वती भवन, ग्रन्थालय के हस्तलिखित ग्रन्थों का सूची पत्र , दशम भाग, वाराणसी, १९६४ पृ० ६८, ६० क्रम सं० ३८६२४, ३८८७४ ।

को भी उपलब्ध नहीं था । क्योंकि उन्होंने भी वैयाकरणभूषणगार के सार शब्द से अनुमान करके इसकी सूचना दी है । वैयाकरणभूषण का लघुरूप वैयाकरण भूषणगार है जो वाजकल पठन-पाठन के व्यवहार में लिया जा रहा है ।

वैयाकरण भूषण के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि यह मूल कारिकात्मक ग्रन्थ भट्टोजिदीक्षित द्वारा है जिसकी व्याख्या काण्डभट्ट ने की है । पं० मीमांसक जी इसी मत के पौण्ड्रक हैं । भट्टोजिदीक्षित ने शब्दकोस्तुम के अनन्तर इस कारिकात्मक ग्रन्थ की रचना की थी । ऐसा वैयाकरणभूषण की इस प्रथम कारिका के आधार पर विद्वानों ने माना है -

फणिभाषितभाष्याद्धेः शब्दकोस्तुम उद्धृतः ।

तत्र निर्णयति स्वार्थः सौम्येणोह कथ्यते ॥

इसी कारिका के आधार पर विद्वानों का मतव्य है कि वैयाकरण भूषण की कारिकाएं भट्टोजिदीक्षित ने लिखी हैं तथा उनकी वृत्ति काण्डभट्ट ने लिखी है । यद्यपि उक्त कारिका की इस बात का प्रमाण न माना जाय कि भट्टोजिदीक्षित मूल कारिकारं नहीं हैं बल्कि काण्डभट्ट ने ही कारिकारं भी लिखीं तथा उनकी वृत्ति भी लिखी है, यह मान लिया जाय तो भी कोई हानि नहीं है, क्योंकि काण्डभट्ट ने यह ग्रन्थ भट्टोजिदीक्षित के शब्दकोस्तुम के अनन्तर लिखा है तथा शब्दकोस्तुम के सिद्धान्तों को इसमें ग्रहण किया है इसलिए काण्डभट्ट भी उक्त कारिका का निर्माण कर सकते हैं । इस विषय में हम यहाँ अधिक चर्चा नहीं करेंगे । इसकी विस्तार से चर्चा हम जल्द से निबन्ध में करना चाहते हैं ।

पठन-पाठन के व्यवहार में वैयाकरणभूषण
सार का ही प्रचलन होने के कारण यह ग्रन्थ सर्वाधिक प्रसिद्ध है। काः
कोक टीकाएँ इस पर विद्वानों ने की हैं जिनमें हरिवंश कृत दर्पण, मन्तु-
देव कृत कान्ति, मंखमिश्र कृत परीक्षा तथा भट्टनाथ कृत विवृत्ति के नाम
विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

काण्डमट्ट के अन्तर इस परम्परा में म० म०
नागेश मट्ट का स्थान सर्वातिशायी है। नागेशमट्ट इस परम्परा के अन्तिम
स्वर्ग-प्रामाणिक वैयाकरण माने जाते हैं। नागेशमट्ट ने इस विषय में
वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा की रचना की है जिसकी सर्वाधिक उपयोगिता
की देखते हुए क्रमशः दो छोटे संस्करण भी स्वयं नागेशमट्ट ने किए -

१- लघुमञ्जूषा स्व

२- परमलघुमञ्जूषा

इनके विषय में हम विस्तार से तृतीयाध्याय में चर्चा करेंगे।

पं० युधिष्ठिर श्रीमणिक जी ने व्याकरण के
वार्त्तिक ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों के परिचय में निम्न ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों के
नाम उल्लेख किए हैं -

ग्रन्थकार	ग्रन्थ
१- केशवकवि	स्फोट प्रतिष्ठा
२- शेषकृष्ण कवि	स्फोट तत्त्व

१- द्रष्टव्य- युधि० मी० - सं० व्या० शा० का इति० भाग २ पृ० ३६३

३- श्रीकृष्णभट्ट	स्फोटचन्द्रिका
४- बाणदेव	स्फोटनिरूपण
५- कुन्दभट्ट	स्फोटवाद

इसके अतिरिक्त एक ग्रन्थ का नामोत्पत्ति बॉर दिया है जिसके रचयिता का नाम बताते हैं। वह ग्रन्थ है- "स्फोटसिद्धि-न्याय विचार"। इसका प्रकाशन महामहोपाध्याय गणपति शर्मा ने सन् १९१७ में त्रिचन्द्रम से किया है^१।

पाणिनीय व्याकरण के चतुर्थ परम्पराय के अन्तर्गत पाणिनीय व्याकरण के विभिन्न पाठों का अध्ययन हुआ है। इस परम्परा में मुख्य रूप से निम्न विषयों पर अध्ययन हुआ है -

- १- धातु पाठ
- २- गणपाठ
- ३- उणादिपाठ
- ४- लिटानुशासन
- ५- परिभाषापाठ

शब्दानुशासन का विधान जब हुआ तो शब्दों, प्रकृति एवं प्रत्ययों का पृथक् पृथक् विधान किया जिसकी परम्पराएँ चल पड़ी कि शब्द धातुज है। सभी शब्द धातुज हैं जैसा कुछ नहीं। किन्तु शब्दों के प्रकृति एवं प्रत्यय विभाजन के लिए धातुजों की महती आवश्यकता देखी। इस प्रत्येक शब्दानुशासन के प्रवक्ता ने शब्दानुशासन के साथ साथ धातु पाठ

१- द्रष्टव्य- सुधि० मी०- सं० व्या० शा० का इति० भाग २ पृ० ३६२

का भी प्रचन किया है। इस सन्दर्भ में धातु पाठ का इतिहास जानने के लिए हम पाणिनि की ही केन्द्र मानकर धातु पाठ के विषय में ज्ञान कर सकते हैं। अतः धातु पाठ के प्रस्ता भी शब्दानुशासन के प्रस्तावों के समान ही हैं -

- १- पाणिनिपूर्ववर्ती धातु पाठ प्रस्ता
- २- पाणिनि का धातुपाठ
- ३- पाणिनि से उत्तरवर्ती धातुपाठ प्रस्ता

इस विषय में विस्तार से परिचय पं० मीमांसक जी ने दिया है^१।

इसी प्रकार गणपाठ भी शब्दानुशासन का अंग है। अतः प्रत्येक व्याकरण प्रस्ता ने अपने शब्दानुशासन की पूर्णता के लिए स्वतन्त्र रूप से गणपाठ का प्रचन किया है। इसकी सम्पूर्ण एवं विस्तृत जानकारी पं० मीमांसक जी ने दी है तथा इस विषय पर डा० कपिलदेव शास्त्री ने स्वतन्त्र रूप से शोध ग्रन्थ लिखा है। “संस्कृत व्याकरण में गणपाठ की परम्परा और वाचार्य पाणिनि”। यह ग्रन्थ प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, अमेर से प्रकाशित हो चुका है। अतः गणपाठ की विस्तृत चर्चा इन ग्रन्थों में की गयी है।

धातुपाठ एवं गणपाठ की तरह उणादिपाठ भी शब्दानुशासन का ही एक अभिन्न अंग है। अतः जिन प्रकार प्रत्येक शब्दानुशासन के साथ धातुपाठ एवं गणपाठ की रचना हुई है उसी तरह उणादि-

१- युधि० मी० - सं० व्या० शा० का इति० भाग २ अध्याय २०, २१, २२

२- वही , २३ वां अध्याय

पाठ की भी रचना सभी शब्दानुशासन के प्रवक्ताओं ने की है। काः उणादि-पाठ का इतिहास भी प्रत्येक शब्दानुशासन के साथ ही जुड़ा है। सभी प्रकार पाणिनि से पूर्व व्याकरण प्रवक्ताओं ने उणादिसूत्रों का प्रवचन किया था। तथा पाणिनि ने भी उणादि सूत्रों का प्रणयन किया था। पाणिनि के बाद भी कातन्त्र एवं चान्द्र इत्यादि परम्परा के वैयाकरणों ने भी उणादि सूत्रों का प्रवचन एवं व्याख्यान किया है। पाणिनीय परम्परा के अन्तर्गत रामवन्द ने प्रधिया कौमुदी एवं मट्टोजिदीप्ति ने सिद्धान्त कौमुदी में उणादि-सूत्रों की व्याख्या की है। इसका ऐतिहासिक विवरण पं० मीमांसक जी ने दिया है^१।

लिंगानुशासन शब्दशास्त्र का अभिन्न अंग है। शब्दों के पुल्लिङ्ग एवं स्त्रीत्वादि का विधान करने के लिए प्रत्येक शब्दानुशासन प्रवक्ता ने लिंगानुशासन का विधान किया है। सम्प्रति पाणिनीय शब्दानुशासन का ही लिंगानुशासन व्यवहृत हो रहा है। पं० मीमांसक ने पाणिनि से पूर्व केवल दो वैयाकरणों का उल्लेख किया है जिन्होंने स्वतन्त्र रूप से लिंगानुशासन का विधान किया है^२। उनके नाम हैं शन्तनु एवं व्याडि। इनके अन्तर पाणिनि ने भी लिंगानुशासन का प्रवचन किया है। इस परम्परा में अनेक आचार्य हुए हैं जिन्होंने पाणिनीय लिंगानुशासन की व्याख्या की तथा अनेक आचार्यों ने लिंगानुशासन का स्वतन्त्र प्रवचन भी किया है जिनका क्रमिक वर्णन पं० मीमांसक जी ने दिया है^३। हम उसे दुहराना नहीं चाहते हैं।

१- द्रष्टव्य- युधि० मी० - सं० व्या० शा० का इति० भाग २ २४ वां अध्याय।

२- वही, पृ० २२४, २२५

३- वही, पृ० २२५-२४१

इस परम्परा में धातु पाठ, गणपाठ, उणादि-पाठ एवं नामलिङ्गानुशासन पाठ के समान परिभाषा पाठ का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। परिभाषाओं का इतिहास भी शब्दानुशासन के आरम्भ के साथ ही जुड़ा हुआ है। सूत्र एवं वाचिकों के अपूर्ण कर््यों को पूर्ण बनाने के लिए परिभाषाओं का निर्माण किया गया। जैसा इसके लक्षण से स्पष्ट होता है। "वनियम प्रणी नियम्कारिणी परिभाषा"।

परिभाषाओं का आरम्भ पाणिनि से पूर्व हो चुका था यह व्याप्ति के परिभाषा प्रणेतृत्त्व से ही सिद्ध होता है। बाद में पाणिनि ने भी परिभाषाओं की रचना की जिनका संकलन एवं व्याख्यान अनेक विद्वानों ने किया है जिनमें म०म० नागेशभट्ट का स्थान सर्वोपरि एवं सर्वमान्य है। पाणिनि के अनन्तर अन्य कातन्त्र, चान्द्रवादि परम्परा के व्याकरणों ने भी परिभाषाओं का प्रणयन एवं व्याख्यान किया है। इसकी विस्तृत चर्चा हम पंचमाध्याय में करेंगे।

पाणिनीय व्याकरण के विविध पन्नों पर नागेश जी के ग्रन्थरत्न नया प्रकाश डालते हैं। संस्कृत विद्या के द्वायकाल में नागेशजी का यह कार्य विशिष्टतम है।

इस अध्याय में हमने नागेश भट्ट से पूर्व संस्कृत व्याकरण का ऐतिहासिक दृष्टि से सिंहावलोकन किया है। यद्यपि इस लघु अध्याय में समस्त व्याकरण शास्त्र के इतिहास का समावेश करना अशक्य नहीं तो दुर्गम कार्य असंभव है। किन्तु हमने प्रियेक्षण दोषों से बचने का प्रयास करते हुए नागेश पूर्व व्याकरण पर एक दृष्टिपात किया है। इस सन्दर्भ में हमने पाणिनि को केन्द्र बिन्दु मानकर पाणिनीय व्याकरण

की विभिन्न परम्पराओं की शीघ्र में ही स्पष्ट करने का प्रयास किया है। हमने मुख्य रूप से पाणिनीय व्याकरण की चार धाराओं को लिया है, जिनके अन्तर्गत समस्त व्याकरण सम्मिलित हैं। वे हैं-

- १- व्याकरण का ऐतान्तिक पक्ष
- २- व्याकरण का प्रक्रिया पक्ष
- ३- व्याकरण का दार्शनिक पक्ष
- ४- व्याकरण के विभिन्न पाठ

हमारे प्रस्तुत लघु शीघ्र ग्रन्थ का विषय

“ नागेश भट्ट का संस्कृत व्याकरण का वीक्षण ” है। कतः नागेश ने व्याकरण के किन किन पक्षों में लिखा है। यह हमने जलन जलन परम्पराओं के अनुसार स्पष्ट किया है। उक्त चारों परम्पराओं में ही नागेश भट्ट ने अप्रतिम ग्रन्थ रत्नों का निर्माण किया है। यह हमने तत्सद् परम्परा के परिचय में ही कहा है।

जगते अव्याय में हम नागेश भट्ट के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित विचार विमर्श करेंगे।

द्वितीय अध्याय

महामहोपाध्याय नागेश भट्ट का नाम संस्कृत-
 नुरागियों के लिए अपरिचित नहीं है। संस्कृत वाङ्मय के प्रत्येक क्षेत्र में
 नागेश भट्ट ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा के बिना अपनी अपर कृतियों के माध्यम
 से लोड़े हैं। धर्मशास्त्र, अल्कारशास्त्र, दर्शन शास्त्र एवं व्याकरणशास्त्र पर
 नागेश ने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखी हैं। डा० बैल्लकर^१ के अनुसार नागेश ने
 चौदह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थरत्न धर्मशास्त्र पर लिखी हैं तथा तीन ग्रन्थों का प्रणयन
 अल्कारशास्त्र पर किया है। दो ग्रन्थ दर्शनशास्त्र पर लिखी हैं। एक योग पर
 तथा दूसरा न्याय पर तर्कभाषा की टीका लिखी है। लगभग एक दर्जन ग्रन्थ-
 रत्न व्याकरण शास्त्र पर लिखकर व्याकरण शास्त्र पर महान् उपकार किया
 है। इस तथ्य की विस्तृत मीमांसा हम आगे करेंगे। परमवैयाकरण नागेश
 भट्ट ने मुख्य रूप से संस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया एवं व्याकरणशास्त्र
 के गढ़ विषयों पर विचार किया है। व्याकरण के प्रत्येक क्षेत्र में नागेश ने
 ऐतनी अप्रतिहत गति से चलाई है। व्याकरण के ऐदान्तिक एवं प्रक्रिया पक्ष
 तथा व्याकरण के दार्शनिक पक्ष पर बार बार परिभाषा पाठ की महत्त्वपूर्ण
 समस्याओं पर विचार किया है तथा उन्हें नवीन दिशाएं प्रदान की हैं। यह
 बात प्रथम अध्याय में दिए गए विवरण से स्पष्ट प्रमाणित होती है। नागेश
 ने व्याकरण के उक्त चारों पक्षों पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखी हैं।

१- ए० के० बैल्लकर - सिंटस आफ संस्कृत ग्रामर पृ० ४०

नागेश भट्ट का समय

नागेश भट्ट के समय निर्धारण के सम्बन्ध में यद्यपि कुछ मत्त वैभिन्न्य की स्थिति भी समझा आती है। क्योंकि कुछ विद्वानों के गवेषणापूर्ण तथ्यों एवं कुछ लोक-कथाओं में परस्पर वैषम्य लगता है। किन्तु नागेशभट्ट के काल निर्धारण के लिए तथा जीवन वृत्त के विषय में डा० पी० वी० काणो^१ को अधिकांश विद्वानों ने प्रमाण माना है। डा० पी० के० गोडे^२ एवं डा० कपिलदेव शास्त्री^३ तथा अन्य विद्वानों ने पी० वी० काणो के मत्त को स्वीकार करते हुए नागेश भट्ट का समय १६७० ई० से १७५० ई० तक का माना है। यद्यपि डा० पी० वी० काणो का यह मन्तव्य आपाततः सत्य है। किन्तु वर्तमान उपलब्ध अन्य तथ्यों के साथ हम इस मत्त की मीमांसा इस प्रकार करना चाहते हैं। डा० पी० वी० काणो द्वारा निर्धारित नागेश भट्ट की पूर्व सीमा अर्थात् जन्म समय प्रायः सभी अन्य मन्तव्यों से भी मिलता है। मुख्य रूप से विप्रतिपत्तियाँ जो आती हैं वे नागेश भट्ट के समय की उत्तर सीमा के सम्बन्ध में हैं।

(१) नागेश भट्ट के समय निर्धारण के लिए डा० एस० के० बेल्स्कर^४ तथा अन्य विद्वानों ने नागेश के जीवन की एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख किया है। १६८८ ई० से १७२८ ई० के सामयिक खाहें

१- डा० पी० वी० काणो - धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १, पृ० ४५३-४५६
पूना, १९३०।

२- देखिए- डा० पी० के० गोडे - दी रिलेटिव क्रोनोलोजी आफ़ सम वर्क्स
आफ़ नागेश भट्ट, प्रकाशित- स्टडीज़ इन इण्डियन लिटरेरी
हिस्ट्री, वाल्यूम ३ पृ० २१२

३- देखिए- परमलघुमञ्जूषा (भूमिका) पृ० १५, सम्पा० कपिलदेव शास्त्री,
कुरुक्षेत्र, १९७५

४- देखिए- एस० के० बेल्स्कर- सिस्टम्स आफ़ संस्कृत ग्रामर पृ० ४१, पूना,
१९७६।

जयपुर नरेश द्वितीय ने १७१४ ई० में अश्वमेध यज्ञ किया था जिसका निमन्त्रण नागेशभट्ट को काशी में भेजा गया था । किन्तु चौर सन्यास ग्रहण करने के कारण नागेश भट्ट काशी नहीं होड़ सकते थे । इसलिए इस यज्ञ में सम्मिलित नहीं हो सके थे ।

इस तथ्य से नागेश भट्ट का १६७० ई० में जन्म इसलिए प्रमाणित होता है, क्योंकि १७१४ ई० के अश्वमेध यज्ञ के समय नागेश एक लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् थे । इस समय नागेश भट्ट की आयु लगभग चालीस वर्ष होनी चाहिए और स्तनदनुसार नागेश भट्ट का जन्म १६७० ई० के लगभग प्रमाणित होता है ।

२- इस सम्बन्ध में घटना का उल्लेख पं० हर प्रसाद शास्त्री ने एशियाटिक सोसायटी के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची प्रकाशित की है, उसकी भूमिका में किया है । जिसके अनुसार नागेश भट्ट की सौ वर्ष की आयु पूरी करने के बाद १७७५ ई० में मृत्यु हुई थी । उस दिन जब वारेन हेस्टिंग्स का जीवन विद्रोह के कारण संकट में पड़ा था । इसी घटना का उल्लेख श्री नारायण दाजीवा वाडेगावकर ने परिभाषेन्दुशेखर की भूमिका में किया है तथा डा० विद्याधर धर्माधिकारी ने अपने शोध-प्रबन्ध

१- S.K. Belvalkar - Systems of Sanskrit Grammar p. 41, Poona
Re. Ind 24.1976.

२- The greatest supporter of Bhattoji Dixita however was Nagoji Bhatta a pupil of Hari Dixita who commented upon all his works and works of his school. He had a long life and lived more than hundred years and died in 1775 on the day when Warren Hastings in jeopardy on account of the Benares revolt.

- N.D. Wadegaonkar, Paribhashendushekharañche
(Marathi Bhashantar) Footnote, Bhoomika,
p 3, Nagpur 1936.

में इस घटना की चर्चा की है ।

उक्त घटना से डा० पी० वी० काणै द्वारा निर्धारित नागेश भट्ट के जन्म की तिथि तो प्रमाणित होती है किन्तु मृत्यु का समय नहीं । क्योंकि १७७५ ई० में साँ वर्ण की आयु तभी पूरी होगी जब १६७४ ई० या उससे पूर्व जन्म हुआ हो और पी० वी० काणै द्वारा निर्णीत जन्म समयसे १६७० ई० प्रमाणित होता है । परन्तु मृत्यु समय १७५० ई० की बात इस तथ्य से सङ्घटित हो जाती है ।

३- नागेश भट्ट की लम्बी शतवर्षायु को प्रमाणित करने वाले अन्य तथ्य भी उपलब्ध होते हैं । इस विषय में परिभाषेन्दु शैख के मराठी भाषान्तरकार बाडेगावकर ने एक प्रवृत्ति कथा का उल्लेख किया है । मराठी ज्ञान कोष के अनुसार वह कथा इस प्रकार है कि नागेश भट्ट का जीवन बहुत लम्बा हुआ था जिसमें उन्हें वृद्धावस्था में कमर में कूबर का रोग हो गया था जिसके कारण नागेश भट्ट को बैठने तथा लिखने पढ़ने में परेशानी होती थी । अतः नागेश भट्ट दीवार में एक गड्ढा खोदकर उसमें कूबर को रखकर लेखन कार्य किया करते थे । इस घटना का उल्लेख डा० धर्माधिकारी ने अपने शोध प्रबन्ध में किया है^१ । और यह घटना नागेश के दीर्घ जीवित्व को प्रमाणित करती है ।

४- इसके अतिरिक्त नागेश भट्ट के जीवन सम्बन्धिनी चर्चा डा० श्रीधर व्यंकटेश केतकर ने 'मराठी ज्ञान कोष' नामक ग्रन्थ में की है । इनके अनुसार नागेश भट्ट की प्रारम्भिक शिक्षा महाराष्ट्र में ही हुई और चालीस वर्ष की आयु में नागेश भट्ट काशी में गए तथा काशी

१- नागेश उनका समय, जीवन एवं व्याकरण को योगदान- डा० वि० धर्माधिकारी का शोध प्रबन्ध , डी० फिल् उपाधि के लिए , इलाहाबाद वि०वि० ।

में उन्होंने व्याकरणशास्त्र एवं अन्य शास्त्रों का अध्ययन किया तथा शब्देन्दुशेखर मंजूषा एवं उद्योत आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया तथा ६२ वर्ष की आयु में नागेश पंक्तव को प्राप्त हो गए ।

मराठी ज्ञानकोणकार के इस मृत को बाढेगांवकर ने इस तर्क से ध्वस्त कर दिया कि ज्ञानकोणकार ने जो विवरण दिया कि चालीस वर्ष की अवस्था में नागेश ने काशी में व्याकरण का अध्ययन किया । तदनन्तर शेखर, मंजूषा आदि ग्रन्थों की रचना की थी । अतः २२ वर्ष के विशद बाढेगांवकर की रचना संस्था असम्भव है ।

५- नागेशभट्ट के समय निर्धारण में एक और प्रमाण की चर्चा डा० पी० के० गोडे आदि ने की है । वह तथ्य वैयाकरण-सिद्धान्तमंजूषा की सिन्धिया प्राच्य विद्या संशोधन मन्दिर में उपलब्ध एक हस्तलिखित पर आधारित है । रत्नाकर त्रिपाठी नामक विद्वान् के द्वारा लिखी गई इस पाण्डुलिपि का समय १७०८ ई० है । इस ग्रन्थ के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार दी गई है -

“ वैयाकरणसिद्धान्त मंजूषा या कृता मया ।

तया श्रीभगवान्नाम्बः शिवो मे प्रीयतामिति ॥ ”

श्री शाके १६३० चैत्र सुदि १४ बुध शुभम् कूर्माचलदेशे अलमोडा श्री ज्ञानचन्द्र-
राज्यस्थाने वीरेश्वर पण्डितगृहनिक्टे लिखितमिदंशाग्रं रत्नाकरत्रिपाठिना ॥
शुभम् ॥

१- देखिए- ना० डा० बाढेगांवकर- परिभाषा-शेखरों के मराठीभाषान्तर
पुष्पिका , पृ० ४, नागपुर , १९३६

उक्त पुष्पिका के अनुसार यह तिथि डा० पी० के० गोडे ने शोधित करके २४ मार्च सन् १७०८ ई० निश्चित की है। अतः मंजूषा की रचना नागेश भट्ट ने निश्चित रूप से १७०० ई० से पूर्व कर दी थी। क्योंकि १७०८ ई० में जो पाण्डुलिपि पूरी की गई वह निश्चित ही तत्कालीन साधनों के अनुसार बहुत लम्बे समय में पूरी हुई होगी। इसके पूर्व नागेश ने इस ग्रन्थ की रचना १७०० ई० तक कर ली थी। वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा में कई स्थलों पर शब्देन्दुशेखर एवं महाभाष्य प्रदीपोद्योत का उल्लेख मिलता है। अतः इन ग्रन्थों में नागेश की प्राद्वि प्रतिभा के सुस्पष्ट दर्शन होते हैं। अतः निश्चित रूप से इन ग्रन्थों के प्रणयन के समय नागेश भट्ट की अवस्था प्राद्वि होनी चाहिए। इस तथ्य से नागेश भट्ट के जन्म का समय १६७० ई० के आस पास ही प्रमाणित है।

उपर्युक्त तथ्यों से नागेश भट्ट के समय के सम्बन्ध में दो विचार धाराएं उत्पन्न हो जाती हैं। एक परम्परा डा० पी० वी० काणे की है। इसके अनुसार नागेश का समय १६७० ई० से १७५० ई० तक का है। तथा दूसरी परम्परा जो नागेश भट्ट को शतवर्षायु मानती है के अनुसार नागेश का समय १६७० ई० से १७७५ ई० तक का माना है। उक्त दोनों परम्परानों की जन्म सीमा या पूर्व सीमा एक ही है। केवल उत्तर सीमा में ही भेद है।

जीवनवृत्त

नागेश भट्ट का जन्म महाराष्ट्र के तासगौन में सतारा नामक जनपद में हुआ था। इनका जन्म ऋग्वेदाध्यायी देशस्थ ब्राह्मण कुल में हुआ था। नागेश भट्ट का दूसरा नाम नागोजी भट्ट भी था। इनके पिता का नाम शिव भट्ट एवं माता का नाम सती देवी था। नागेश

१- शिवभट्ट सुतो धीमान् स्तीदैव्यास्तु गर्भजः ॥

- लघुशब्देन्दुशेखर मंगलाचरण

भट्ट ने विषाध्ययन काशी में ही किया था । केवल मराठी ज्ञानकोषकार श्रीधर व्यंकटेश केतकर के अनुसार नागेश की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई । और सर्वप्रथम इन्होंने कर्मकाण्ड सीखा जिससे यह पौरौहित्य कार्य करते थे स्व परिवार का पालन करते थे । तथा चालीस वर्ष की आयु में ये काशी गए और वहाँ शास्त्रों का अध्ययन किया ।

एक अन्य तथ्य की चर्चा परिमालेन्दुशेखर के मराठी भाषान्तरकार ने इस ग्रन्थ की भूमिका में तथा पं० कालिका प्रसाद शुक्ल ने स्वयम्पादित परमलघुमञ्जूषा की भूमिका में की है । नागेश भट्ट आरम्भ में मूर्ख थे तथा धीरे धीरे व्यर्थ में घूमते रहते थे या पहलवानी करते थे । एक बार काशी में बहुत बड़े विद्वानों की सभा हो रही थी । ये वहाँ व्यर्थ ही प्रमण करते हुए पहुँच गए और उस सभा में सबसे पहली पंक्ति में बैठ गए , तथा उस विद्वन्मण्डली में इन्होंने अपने को महामूर्ख समझा तथा बहुत अपमानित हुए । यहीं से अपमानित होकर या विषाध्ययन होकर चले गए और सरस्वती की घोर तपस्या की तथा दिव्य प्रतिमा प्राप्त की स्व शास्त्रों का अध्ययन किया^{और} उनकी महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर गम्भीर विचार किया ।

गुरु-परम्परा

व्याकरण का अध्ययन नागेश भट्ट ने हरि दीक्षित से किया था^३ । यह हरिदीक्षित प्रसिद्ध वैयाकरण भट्टोजिदीक्षित के पात्र थे । न्याय का अध्ययन नागेश ने राम राम भट्ट से किया । इन दोनों

१- परिमालेन्दुशेखरां दे मराठी भाषान्तर, भूमिका , ना० दा० बाडेगांवकर

२- कालिका प्रसाद शुक्ल- परमलघुमञ्जूषा, भूमिका पृ० १२

३- देखिए- अधीत्यफणिभाष्या विधं सुधीन्द्र हरिदीक्षितात् ।।

- वं० पि० म०, अन्तिम श्लोक , पूर्वादि

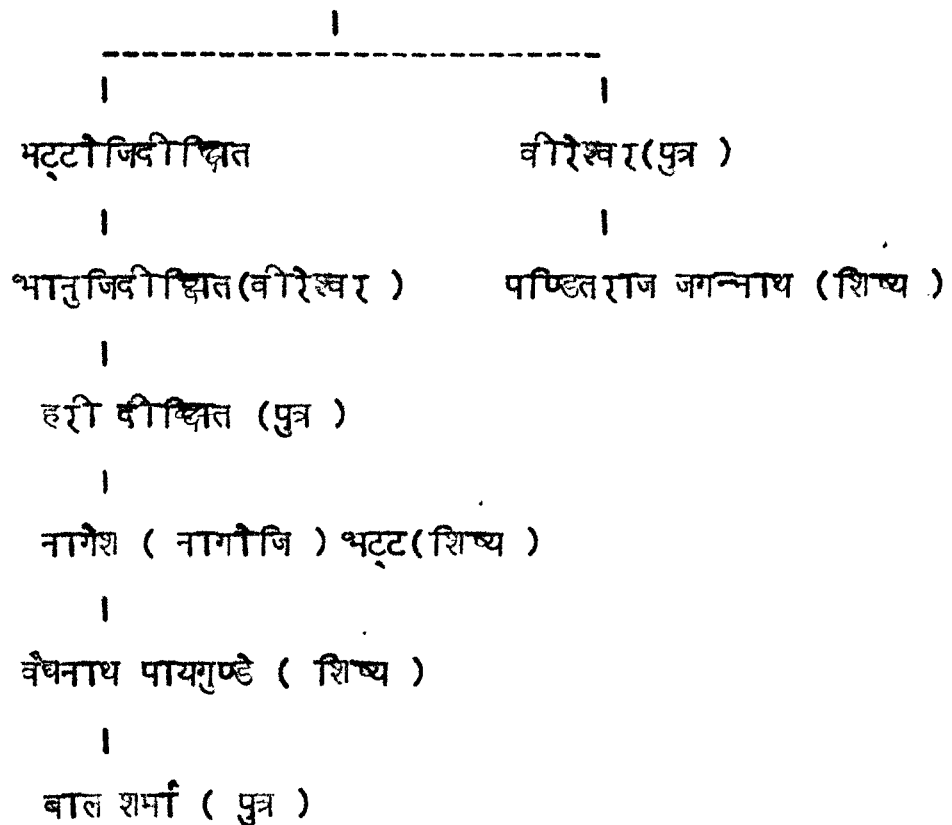
४- देखिए- न्याय तन्त्रं रामरामात् वादिरक्षोध्य रामः ।। वही, उत्तरादि

का उल्लेख नागेश ने अनेक बार किया है ।

शिष्य परम्परा

नागेश भट्ट के प्रमुख शिष्य वैद्यनाथ पायगुण्डे थे । इन्होंने नागेश भट्ट के प्रायः सभी वैयाकरण ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी हैं । वैद्यनाथ के ही पुत्र बाल शर्मा भी नागेश भट्ट के शिष्य थे ऐसा उल्लेख मिलता है । नागेश भट्ट की गुरु शिष्य परम्परा को हम निम्न चक्र से स्पष्ट करते हैं -

श्री शेषकृष्ण (प्रक्रियाप्रकाशकार)



अधिकांश विद्वानों का मत है कि नागेशभट्ट के कोई अपत्य नहीं था । और यह बात शब्देन्दुशेखर एवं मंजूषा के इस अन्तिम श्लोक से प्रमाणित होती है -

शब्देन्दुशेखरं पुत्रं मंजूषां चैव कन्यकाम् ।
स्वमतां गन्धगुत्पाद्य शिष्ययोरर्पितौ मया ॥

इस श्लोक से ऐसा ही लगता है कि नागेश भट्ट अपत्यरहित थे इसलिए उन्होंने शब्देन्दुशेखर को पुत्र और मंजूषा को कन्या मानकर शिष्य पार्वती को अर्पित किया है । प्रायः सभी विद्वानों का मत यही है कि नागेश की कोई सन्तति नहीं थी ।

लेकिन इस विषय में मात्र एक विद्वान् ऐसे हैं जिन्होंने नागेश भट्ट की सन्तान थी यह सिद्ध करने का प्रयास किया है । वो है परिभाषेन्दुशेखर के मराठी भाषान्तरकार नारायण दाजीवा वाडेगावकर । वाडेगावकर ने परिभाषेन्दुशेखर की भूमिका में इस तथ्य को उद्घाटित किया है^१ । जिसे डा० धर्माधिकारी ने भी अपने शोध प्रबन्ध में ग्रहण किया है । तथ्य को वाडेगावकर ने इस प्रकार स्पष्ट किया है कि नागेश भट्ट की एक कन्या थी । जिसका विवाह उन्होंने काशी में किया था । देववशीय महाराष्ट्र के ऋग्वेदी देशस्थ ब्राह्मण परिवार में नागेश जी ने अपनी कन्या का विवाह किया था । इस परिवार के विषय में वाडेगावकर ने लिखा है कि आज भी काशी के " सिद्धेश्वरी " नामक मुहल्ले में पत्थर से निर्मित तीन मंजिल के मकान में उस परिवार के लोग रहते हैं ।

१- ना० दा० वाडेगावकर- परिभाषेन्दुशेखराचि मराठी भाषान्तर, भूमिका
पृ० ५, नागपूर, १९३६

२- डा० विद्याधर धर्माधिकारी, शोधप्रबन्ध, इलाहाबाद वि०वि०

३- द्रष्टव्य- वाडेगावकर- परिभाषेन्दुशेखराचि मराठी भाषान्तर पृ० ५ भूमिका

झी का उल्लेख डा० सीताराम शास्त्री ने भी किया है। डा० सीताराम शास्त्री ने स्वसम्पादित बृ०श० श० की भूमिका में इस तथ्य का स्पष्टीकरण दिया है। कतः इनके अनुसार भी नागेश जी की एक कन्या थी।

वस्तुतः हम स्वयं भी काशी गए तथा इस तथ्य की परीक्षणोंका से कुछ विद्वानों से चर्चा भी की किन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। इस तथ्य के समर्थन में भी किसी ने प्रायः अधिक बात नहीं कही।

संस्कृत साहित्य में एक उक्ति बहुत प्रसिद्ध है -
 “विनाश्रयाः न तिष्ठन्ती पण्डिताः वनिताः क्ताः।” नागेश भट्ट के विषय में भी यह चरितार्थ होती है। नागेश भट्ट के वाश्रयदाता के रूप में शुंगवैरपुरेश रामसिंह राजा की जाना जाता है। इसका उल्लेख स्वयं नागेश भट्ट ने कई स्थानों पर किया है। नागेश ने स्वयं लिखा है -

“शुंगवैरपराधीशाद्रामतीलब्धजीविकः।” २

यह स्थान हलाहाबाद से कुछ मील दूरी पर स्थित है जिसका आधुनिक नाम गिरौर है। राजा रामसिंह ने नागेश का शिष्यत्व स्वीकार किया था। इसका उल्लेख स्वयं रामचन्द्र ने कव्यात्म रामायण की टीका में के आरम्भ में किया है। उदाहरणार्थ यह पत्र प्रस्तुत है -

१- देखिए- बृहच्छब्दवैन्दुशेखर की भूमिका पृ० ५५, सम्पा० डा० सीताराम शास्त्री, वाराणसी, १९६०

२- वैयाकरण सिद्धान्तलघुसंग्रहा के अन्तिम श्लोक

“ वर्धनाकल्पवृक्षेण विद्वज्जन समासदा ।

भट्टनागेश शिष्येण बध्यते रामवर्मणा ॥ १

कुछ विद्वानों का मन्तव्य है कि इसकी रचना नागेश भट्ट ने ही स्वयं की थी किन्तु अपने आश्रयदाता के नाम से प्रकाशित कर दिया था ।

नागेश भट्ट के विषय में एक और दन्तकथा प्रचलित है कि नागेश को अपने जीवन में कठोर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा था लेकिन उन्होंने किसी से याचना नहीं की थी । एक बार उनकी पत्नी ने कहा कि काशी छोड़कर कहीं अन्यत्र चले और कुछ धनोपाजन कर लें । पत्नी का कहा मानकर नागेश जी काशी से बाहर जाने को उद्यत हुए और गंगा तट पर पहुँचे तो गंगा पार करने के लिए उन्होंने नाविक से कहा- नाविक के पैरे मारने पर नागेश ने कहा कि मेरे पास पैरे नहीं हैं, तो नाविक बोला कि - तुम कोई नागेश भट्ट तो हो नहीं जो बिना पैरे के तुम्हें उतार दूँ । ऐसा सुनकर नागेश भट्ट वापस काशी में ही आगए^२ । इसके बाद जब शृंगवेरपुर के राजा रामसिंह को फता चला तो उन्होंने नागेश भट्ट को अपना गुरु बनाया और आर्थिक संकट को भी दूर किया । इस सन्दर्भ में कुछ लोगों का यह भी मन्तव्य है कि नागेश पहले तो प्रच्छन्न रूप से शृंगवेरपुर के यहाँ रहते थे लेकिन एक दिन किसी ने सभा में कह दिया कि “ कोऽयं भारवाही नागेशः ” तब नागेश ने अपने को प्रकट किया था ।

१- देखिए- भूमिका- रसगंगाधर (गुरुसम्यक्प्रशिक्षण सल्लि) सम्पा० पं०

दुर्गाप्रसाद, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९३६

२- देखिए- ना० दा० वाडेगावकर- परिभाषा-न्दुशेखराचि मराठी भाषान्तर

भूमिका, नागपुर, १९३६

३- डा० विद्याधर धर्माधिकारी- नागेश का जीवन परिचय, कृतियाँ एवं

व्याकरण को योगदान - शोध प्रबन्ध, इलाहाबाद वि०वि० १९६६

नागेश भट्ट के जीवन वृत्त एवं देश काल के विषयके मुख्य रूप से यह तथ्य उपलब्ध होते हैं। अब हम नागेश भट्ट की रचनाओं के विषय में प्रकाश डालेंगे।

कृतियाँ

नागेश भट्ट ने लगभग एक सौ से भी अधिक ग्रन्थों का प्रणयन करके संस्कृत साहित्य की समृद्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वस्तुतः नागेशभट्ट की रचनाओं के विषय में महामहोपाध्याय के० वी० अम्यंकर ने लिखा है कि “ नागेश ने शोटे और बड़े कुल मिला कर सौ से भी अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। ” किन्तु नागेश भट्ट के सम्स्त ग्रन्थों का एकत्र संकलन सर्वप्रथम ओफ्रेस्ट ने ‘कैटलोगस कैटलोगरम’ में किया था। और नागेश के ग्रन्थों का दूसरी बार एकत्र संकलन डा० के० कुंजुम्मी राजा ने मद्रास विश्वविद्यालय से ‘न्यू कैटलोगस कैटलोगरम’ के दशम भाग में सन् १९७८ ई० में किया है। इन दोनों ग्रन्थों में दी गई नागेश के ग्रन्थों की संख्या में बहुत भेद है। ओफ्रेस्ट ने नागेश के ४७ ग्रन्थों का नाम निर्देश पुरस्सर उल्लेख किया है। जबकि ‘न्यू कैटलोगस कैटलोगरम’ में ७० ग्रन्थों के नाम उल्लिखित हैं। हम यहाँ दोनों सूचियों को यथावत् उद्धृत कर रहे हैं -

ओफ्रेस्ट द्वारा दी गयी सूची^१

न्यू कैटलोगस कैटलोगरम में दी गई^३

सूची (नागेश के व्याकरण
विषयक ग्रन्थ)

१- अलंकार सुधा कुवलयानन्द टीका

१- परमलघुमञ्जूषा, बनारस, १९१३

१- वैलिस- के०वी० अम्यंकर- डिक्शनरी आफ संस्कृत ग्रामर पृ० २००

(डा० कपिलदेव शास्त्री द्वारा संपादित वं०सि०म० की भूमिका पृ० १)

- २- अष्टाध्यायी पाठ
- ३- आचारेन्दुशेखर
- ४- आशौचनिर्णय
- ५- इष्टिकालनिर्णय
- ६- कात्यायनी तन्त्र
- ७- काव्यप्रदीप उद्योत
- ८- रसगंगाधर टीका- गुरुमर्म-
प्रकाशिका
- ९- चण्डीटीका या देवीमाहात्म्य
टीका
- १०- चण्डीस्तोत्र प्रयोगविधि
- ११- तर्कभाषा टीका युक्ति-
मुक्तावली
- १२- तात्पर्यदीपिका
- १३- तिहोन्तसंग्रह
- १४- तिथीन्दुशेखर
- १५- तीर्थन्दुशेखर
- १६- त्रिस्थलीसैतु (?)
- १७- धातुपाठवृत्ति
- १८- णोरणिवादार्थ
- १९- प्रदार्थदीपिका
- २०- परिभाषेन्दुशेखर
- २१- फाजलिसूत्र वृत्ति
- २२- पातञ्जलसूत्रवृत्तिभाष्यच्छाया-
व्याख्या

२- परिभाषेन्दुशेखर, चौखम्बा, १९१५

३- बृहच्छब्देन्दुशेखर या शब्देन्दुशेखर

on Siddhantakamudi Ptd-
Sarawati Bhawan Granthmala-87
Varanasi, 1960

४- उद्योत on Kaiyata's Mahabhasya
Pradip, Ptd. N.S. Press
Bombay, 1908

५- लघुमञ्जूषा या वैयाकरणगिद्वान्त-
मञ्जूषा

Adyar.D.VI -544
Ptd. Chankhambha-44

६- लघुशब्देन्दुशेखर Gr.10 663-66
M-D. 17797 Ptd. Kas-Skt. Ser.
27- 1925

७- विष्णुमपदी on शब्दकोस्तुभ
B IIL 22 K 88 NP I-110 Oudh
IX II

८- स्फोटवाद PUL . II. p. 100
Ptd. Adyar Library Ser.

९- कारकार्यनिर्णयः Mithila

१०- तात्पर्यदीपिका Oppert. I 3308

११- तिहोन्तसंग्रह Oppert. I-6377

१२- धातुपाठवृत्ति K- 83

१३- णोरणाविटिसूत्रार्थविचार from
शब्देन्दुशेखर Mt. 4264
Trav. Uni. 266 6 (Inc.)

- २३- प्रभाकरचन्द्र तत्त्वदीपिका
टीका
- २४- प्रयोगसरणि
- २५- प्रायश्चित्तेन्दुशेखर
- २६- प्रायश्चित्तेन्दुशेखरसारसंग्रह
- २७- महाभाष्यप्रदीपौघोत
- २८- रसतरंगिणी टीका
- २९- रसमंजरीप्रकाश
- ३०- रामायणटीका
- ३१- लङ्काणरत्नमालिका
- ३२- विष्णुमपदी शब्दकौस्तुभटीका
- ३३- वेदसूक्तभाष्य
- ३४- वैयाकरणकारिका
- ३५- वैयाकरणभूषण (?)
- ३६- वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जुषा
- ३७- व्याससूत्रेन्दुशेखर
- ३८- शब्दरत्न (?)
- ३९- शब्दान्तसागरसमुच्चय
- ४०- सुप्तिहन्तसागरसमुच्चय
- ४१- शब्देन्दुशेखर
- ४२- संस्काररत्नमाला
- ४३- लघुसंस्थसूत्रवृत्ति
- ४४- सापिण्ड्यमंजरी
- ४५- सापिण्ड्यदीपिका
- ४६- सफोटवाद
- ४७- नागोजीभट्टीय
- १४- जैरणिवादार्थ Oppert I 4214
- १५- परिभाषासंग्रह या परिभाषेन्दु-
शेखर Udaipur II 193, 5
- १६- लघुशब्दरत्न on Pravdhamanorana
based on Haridiksitas
Bhacchabdaratna
See Deccan College Edn. 1966
- १७- वैयाकरणकारिका Intro- 48
RHS - 48
- १८- शब्दान्तसागरसमुच्चय Oppert I
8404
- १९- शेखर abh कवीन्द्राचार्य 1192
see आचारेन्दुशेखर
- २०- सुप्तिहन्तसागरसमुच्चय
Oppert I. 5416
- २१- स्तुटीका आध्यात्मरामायण
ascribed to his Patron Ramavarman
- २२- देवीमाहात्म्य टीका या चण्डी-
सप्तस्ती टीका अथवा दुर्गासप्त-
स्तीटीका
from मार्कण्डेय पुराण BRAS 919 Oxf.
II 1185
- २३- चण्डीस्तोत्रप्रयोगविधि from his
Com. on Devimahatmya N.C.C.
VI . p. 300
(works on Gh. sastra)
- २४- आचारेन्दुशेखर IO . 1619 See
MCC II p 340
- २५- आशीचनिर्णय Bomb- Uni 982
DM -2963- IO-5582

२६- वाशावेन्दुशेखर Baroda 8346

Raipur- 599

२७- इष्टिकालनिर्णय Rice - 194

२८- तिथिनिर्णय CPB-2051-52

IMAV. Uni 1622 Wal 370

२९- तीर्थेन्दुशेखर Baroda 8343

RASB III 2444

३०- त्रिस्थलीसितुप्रघट्टक CPB 8118

Radh- 39

Prop same as तीर्थेन्दुशेखर

३१- प्रायश्चित्तेन्दुशेखर या पारंग्रह

Baroda 13625, IC 1727 L- 1735

Ptd. वानन्दाश्रम- 100

३२- श्राद्धेन्दुशेखर Alwar- 1512

Ext. 360

३३- सापिण्डिर्मंजरी dh- Km - 86

३४- सापिण्ड्यदीप्ति या मंजरी K-202

see सापिण्डिर्मंजरी

३५- सापिण्ड्यनिर्णय dh क्वीन्द्राचार्य 1216

उज्जैन latest additions 185

- ३६- सापिण्ड्यप्रदीप IM 3362 Jedhapur 603
Rajapur - 600 (works on Alankara)
- ३७- उदाहरणप्रदीप on काव्यप्रकाश
See NCC I V P 95 b
- ३८- उद्योत on काव्यप्रदीप of गोविन्दठाकुर
on काव्यप्रकाश
Alph-List Beng. Govt. PP 26(No. 2923)
100 (No. 2923) (Laghv.)
DEIAS 136 BOBI 149 of 1902-07 ptd.
- ३९- वर्त्कारसुधा on कुलत्यानन्द
RASB VI 4889 See NCC IV 252 a
- ४०- गुरुमर्मप्रकाशिका on रसगोधर
IO 1204 Ptd. KM 12 1888
- ४१- रसतरंगिणीटीका Ptd. Kavyamala
see Aufrecept (c I-494)
- ४२- प्रकाश on रसमञ्जरी of Bhanudatta
Ptd. Ben Sxt ser E1 - 1904
Miscellaneous : Many of may be parts of
his major works.
- ४३- अष्टश्लोकीसापिण्डनिर्णय IM 3357
- ४४- उपाकर्मप्रयोग RASB -II 1617
- ४५- कुण्डपद्धति CPB 918
- ४६- कात्यायनीतन्त्र Oudh IX 20
- ४७- गर्भवतीव्यमिचारिणीप्रायश्चित्त
Rajapur - 903
- ४८- गर्भिणीभृति Rajapur - 902
- ४९- गोत्रप्रवरनिर्णय CPB 1457-58

५०- प्रभाकरचन्द्रटीका on तत्त्वदीपिका

Gr. oadh -X VII- 22.

५१- युक्तिमुक्तावली on तर्कभाषा

K-156 oppert II 9533

५२- दत्तमीमांसा dh. Mandalik sup. 150

५३- दानसंग्रह Udaipur II 12, 3

५४- नागेशीव्याख्या , पुराण CPE - 2498

५५- नमस्कारद्वारा रुद्रानुष्ठानप्रयोग

RAB II 813

५६- पदार्थदीपिका by CPB 2830 K. 152

५७- पर्वनिर्णय- कवीन्द्राचार्य 545

५८- पातञ्जलसूत्रवृत्तिव्याख्या Hall F 10

(Vyakhya) IM- 410 (Inc.)

(Bhasyaschaya) Kithila . NW 420

(Vyakhya) FUL II p 31 Ptd. Kas-Skt
Ser. 23

५९- प्रत्यास्थानसंग्रह

FOR I 404 of 1899 -1915

६०- प्रयोगविधि Tantra - Mithila

६१- प्रयोगसरणि Tantra - B IV 260

६२- तिलक टीका on रामायण, जौधपुर-६

With text Kavindracharya - 1447

R A Sastri I- p- 16

Prob- C on आध्यात्मरामायण

६३- वेदसूक्तभाष्य B- I- 28

६४- वृत्त्यमग्रह Rep- Hpr- 1901 . 06 p-5

६५- शंकासमाधान Gr. CPB 5525

६६- शतचण्डी- सहस्रचण्डीप्रयोग

उदयपुर P. 150 No. 644
of Ptd. Cat.

६७- रत्नकाररत्नमाला Km . 84

६८- लघुसांख्यसूत्रवृत्ति on सांख्यप्रवचनसूत्र

Matl. p. 2 N.W. 396

नागेशमट्टी (१)

नागेशविवरण (?)

नागेशी व्याख्या (?) Purana by

Nagesa bhatta CPB 2498

नागेशमट्ट की उपरिनिर्दिष्ट कृतियों के विषय में विद्वत्समाज में कुछ विप्रतिपत्तियाँ हैं। जैसा कि उपरिनिर्दिष्ट सूचियों से स्पष्ट है। प्रथम सूची का संकलन आग्नेष्ट ने किया और उन्होंने केवल ४७ ग्रन्थों को नागेश प्रणीत बताया है। किन्तु द्वितीय सूची का संकलन डा० के० के० राजा ने किया है और उन्होंने ७० ग्रन्थों को नागेश विरचित माना है। दोनों सूचियों में संकलित सभी ग्रन्थों में से अधिकांश ग्रंथ मुद्रित या हस्तलिखित रूप में उपलब्ध हैं। किन्तु कुछ ग्रन्थों के विषय में ग्रन्थ सूचियाँ ही प्रमाण हैं। उपरिनिर्दिष्ट दोनों सूचियों में कई ऐसे ग्रन्थों के नाम संकलित हैं जिनके प्रणेतृत्व के विषय में विद्वानों में भारी वैमत्य है। उनकी संक्षिप्त चर्चा हम यहाँ अभीष्ट समझते हैं।

ऐसे प्रमुख चार ग्रन्थ हैं जिसके प्रणीता के विषय में विद्वानों में वैमत्य है :

- १- शब्दरत्न
- २- वैयाकरणभूषण
- ३- सफोटवाद
- ४- रामायण टीका - तिलक स्व' सेतु

उपर्युक्त की हम क्रमशः चर्चा प्रस्तुत करते हैं ।

भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी पर स्वोपज्ञ प्रादं मनोरमा टीका लिखी थी । जिस पर कई महत्त्वपूर्ण व्याख्यान लिखी गई हैं । शब्दरत्न प्रादं मनोरमा की उन व्याख्याओं में से ही एक है । शब्द-रत्न वस्तुतः दो संस्करणों में उपलब्ध है :

- १- बृहच्छब्दरत्न स्व'
- २- लघुशब्दरत्न

इनके विषय में विद्वानों में तीन आधारणाएँ प्रचलित हैं -

प्रथम आधारणा के लोग उभय शब्दरत्नों को नागेश जी के गुरुजी हरिदीक्षित द्वारा प्रणीत मानते हैं । उनमें से प्रो० के०वी० अभ्यंकर इसी मत के समर्थक हैं । प्रो० अभ्यंकर के अनुसार उभय शब्दरत्नों की रचना भट्टोजिदीक्षित के पात्र स्व' नागेश भट्ट के गुरुजी हरिदीक्षित ने की है^१ ।

१- द्रष्टव्य- *Date and Authorship of the Śabdaratna and Erhacchabdaratna(Thesis) by K.V. Abhyankar*
 Printed in ABORI, Vol. 32, Pp 258-260
 Poona, 1951.

एक दूसरी अवधारणा के लोगों का कथन है कि हरिदीक्षित जी ने प्रादिमनोरमा पर वृ० श० १० व्याख्या लिखी थी उसके अनन्तर उनके विद्वान् शिष्य नागेश भट्ट ने प्रादिमनोरमा खं वृ०श०१० से कई स्थानों पर मत्तमेद दिखाते हुए ल०श०१० की रचना की तथा गुरुदक्षिणा के रूप में अपने गुरुजी हरिदीक्षित जी को समर्पित कर दी। इस मत्त के समर्थक डा० सम० एस० भट्ट का कहना है कि ल०श०१० के तर्क और युक्तिवादों की वृ०श० १० से भिन्नता देखते हुए तथा वृ०श० शै० खं ल० श० शै० से साम्य होने से यही सिद्ध होता है कि ल० श० १० का प्रणयन नागेश भट्ट ने किया है^१।

इन दोनों से भिन्न एक तीसरी अवधारणा यह है कि उभय शब्दरत्नों का प्रणयन नागेश भट्ट ने ही किया था। तथा गुरुदक्षिणा के रूप में अपने गुरुजी को समर्पित कर दिया था। इस मत्त के समर्थक श्री ना० दा० वाडेगावकर हैं^२।

उपसुक्त तीनों मतों में श्री वाडेगावकर का मत बहुत अधिक तर्कपूर्ण या युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि वाडेगावकर के युक्तिवाद इस तर्क से ध्वस्त हो जाते हैं कि वृ० श० १० से ल०श०१० में कई स्थलों पर तर्क एवं युक्तिवादों में विरोध मिलता है। अतः एक ही लेखक के दो ग्रन्थों में मूल युक्तिवादों में विरोध की सम्भावना ही नहीं होती है। जबकि ल०श० १० के युक्तिवाद लेखक की अन्य वृ० श०शै० खं ल०श० शै० नामक कृतियों से साम्य रखते हैं। अब प्रश्न उठता है कि प्रथम एवं द्वितीय मत्त में किसके तर्क स्पष्ट हैं ?

१- Authorship of the Laghvsabdaratna(Research article)

by Dr. M.S. Bhat, Printed in M.D.Balankar Commemoration
Volume pp 203-205 Poona.

२- परि०शेखराचि म० भा०- भा० का० ना०दा० वाडेगावकर, भूमिका , नागपुर

प्रौ० अभ्यंकर का तर्क है कि हरिदीक्षित जी ने पहले बृ०श०१० की रचना की जिसके अनन्तर उनके शिष्य नागेश भट्ट ने बृ०श० शै० स्वं ल०श०शै० का प्रणयन किया तथा बृ०श०१० के कई युक्तिवादों का संपन्न भी नागेश जी ने इन ग्रन्थों में कर दिया । इसके अनन्तर हरिदीक्षित जी ने अपने विद्वान् शिष्य के कुछ पत्तों की ग्रहण करते हुए ल०श०१० की रचना की । ल०श० १० के तद्धित स्वं कृदन्त प्रकरणों के अन्त में इसका निर्देश भी कर दिया ।

इसके विरुद्ध डा० राम०एस० भट्ट का मन्तव्य है कि ल० श० १० की रचना नागेश भट्ट ने की है । इसका प्रथम प्रमाण तो ल०श० १० के तर्क स्वं युक्तिवादों का बृ०श०१० से वैषम्य स्वं बृ० श० शै० तथा ल०श० शै० से साम्य है, तथा इसके अन्य प्रमाण नागेश के प्रत्यक्ष शिष्य वैष्णवाथ पाय-गुण्डे के कथन हैं । वैष्णवाथ ने ल० श० १० की भावप्रकाश नामक टीका लिखी है । जिसमें लघु० श०१० में जहाँ कहीं " अन्यत्र " शब्द आया है वहाँ वैष्णवाथ ने बृ० श० शै० स्वं परि० शै० तथा उपोत्त का निर्देश किया है । अतः काल्पम

१- Date and Authorship of the Sabdaratna and Brahmaschbdaratna by K.V. Abhyankar (Research article) Printed in ABORI Vol.32 pp 253-260, Poona 1951.

२- द्रष्टव्य- (क) विस्तरस्त्वस्मत्कृतो शब्दरत्ने मदन्तेवासिभूतशब्देन्दुशेखरमञ्जुषयीश्च

द्रष्टव्य इति ।। प्रादुर्गमनोरमा ल०श०१० संहिता, बृ० ५४३,

बनारस, १८८८

(ख) " विस्तरस्तु बृहच्छब्दरत्ने मदन्तेवासिभूते बृहच्छब्देन्दुशेखरादां द्रष्टव्यः ।

- वही पृ० ६३०

३- (क) ल०श०१० " अत्रयद्वक्ताव्यम् तद् अन्यत्रोक्तम् ।।

भावप्रकाश- १ प्रत्याहार विषये यद्वक्ताव्यम् संपन्नम् तच्छब्देन्दुशेखरे

उक्तम् इत्यर्थः । "

(ख) ल०श०१० - अन्यत्रविस्तरेण निरूपितम् । "

भावप्रकाश- परिभाषा-तुल्यशेखरे इत्यर्थः ।

(ग) ल०श०१०- इत्यन्यत्रविस्तरः । भावप्रकाश- उपोत्तादावित्यर्थः

की दृष्टि से वैयनाथ पायगुण्डे हरिदीक्षित और नागेशभट्ट के अधिक समीपस्थ थे। इसलिए वास्तविकता का ज्ञान वैयनाथ जी को रहा होगा, यह मानकर वैयनाथ जी की बात अधिक सत्य प्रतीत होती है।

वस्तुतः इन दोनों के युक्तिवादों को देखते हुए एक निर्णय पर पहुँचना तो कठिन है, किन्तु फिर भी शैली एवं युक्तिवादों के साम्य एवं वैषम्य को देखते हुए ल०श०र० का प्रणीता नागेशभट्ट को ही माना जा सकता है।

वैयाकरण-सूत्रण का नाम नागेश भट्ट के साथ जोड़ा जाता है। परन्तु प्रसिद्ध वैयाकरण-सूत्रण एवं वैयाकरण-सूत्रण-सार दोनों ग्रन्थ नागेश भट्ट के पूर्ववर्ती वैयाकरण कौण्डभट्ट ने लिखे हैं जो आज मुद्रित रूप में दोनों ही उपलब्ध हैं। नागेश भट्ट के नाम से वैयाकरण-सूत्रण नामक कोई भी ग्रन्थ आज तक मुद्रित रूप में तो है ही नहीं किन्तु हस्तलिखित की भी हमें बहुत प्रयास करने पर भी सूचना नहीं मिली। इस सन्दर्भ में हमने कई प्रसिद्ध वैयाकरणों से भी बातचीत की है। अतः उनका मत भी यह है कि नागेश भट्ट ने कोई वैयाकरण-सूत्रण नामक ग्रन्थ नहीं लिखा। इस ग्रन्थ का निर्देश नागेश भट्ट की कृति के रूप में केवल आफ्रेस्ट ने अपनी ग्रन्थ सूची कैटालोगस कैटालोगरम में किया है। आफ्रेस्ट के बाद डा० के० के० राजा ने अपनी ग्रन्थ सूची न्यू कैटालोगस कैटालोगरम में वं०भू० का नाम नहीं दिया है तथा आफ्रेस्ट ने भी इस ग्रन्थ के आगे प्रश्नवाचक चिह्न दिया है। अतः स्पष्ट है कि आफ्रेस्ट भी इस ग्रन्थ के प्रणीता के विषय में सन्दिग्ध थे। अतः वस्तु तथ्य यही हो सकता है कि नागेश भट्ट ने वं० भू० की रचना नहीं की होगी। और किसी भ्रान्तिवश इस ग्रन्थ का नाम नागेश जी के साथ जुड़ गया होगा। तथापि यह अनुसन्धेय है कि

सूची में इसका नाम नागेश जी के साथ कैसे जोड़ा गया ? क्या कौण्डभट्ट के वं० भू० से भिन्न कोई नागेश प्रणीत वं० भू० है ।

डा० कपिलदेव शास्त्री ने नागेश प्रणीत रफोटवाद नामक ग्रन्थ के विषय में कहा है कि यह ग्रन्थ वं० भू० म० का ही अपरनाम है पृथक् कोई ग्रन्थ नहीं है । अतः डा० कपिलदेव जी की यह सम्भावना आज रफोटवाद के सुदृढ़ रूप में उपलब्ध होने के कारण ध्वस्त हो जाती है । भले ही यह ग्रन्थ मञ्जुषा से अधिकारितः साम्य रस्ता हो किन्तु यह पृथक् ग्रन्थ रूप में उपलब्ध है । इसकी विस्तृत चर्चा हम तृतीय अध्याय में करेंगे ।

इसी तरह की विप्रतिपत्ति आध्यात्म रामायण की टीका 'सैतु' तथा रामायण टीका 'तिलक' के विषय में है । उक्त दोनों टीकार शृंगवेरपुराधीश राम गिंह वर्मा के नाम से प्रचलित हैं । किन्तु इनके साथ भी नागेश का नाम जोड़ा जाता है ।

यह तो प्रसिद्ध है कि शृंगवेरपुरेश राम गिंह वर्मा नागेश भट्ट का आश्रयदाता एवं शिष्य था । यद्यपि आध्यात्मरामायण टीका के आरम्भ में दिए श्लोक से तो शृंगवेरपुरेश राम गिंह को इस टीका का प्रणीता मान लेना चाहिए । किन्तु उस समय आश्रयदाता नरेशों के लिए

१- Introduction of Vaidyakaṛaṇa Śiddhāntamanjusa, Pp 17-21
Ed. Dr. K.D. Shastri, Kuruksetra, 1985.

२- देखिए- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अध्याय ३ पृ० / / / /

३- शृंगवेरपुराधीशाद्रामात्मतत्त्वजीविकः ॥ ल० म० अन्तिम श्लोक

४- शृंगवेरपुरेशेन रामात्म तत्त्वजीविकः अर्थिनां कल्पवृक्षोणविद्वज्जनसभासदा ।

भट्ट नागेश शिष्येण बद्धते रामवर्मणा सैतु परीपकृतयेऽध्यात्मरामायणा-
म्बुधौ ॥ - द्रष्टव्य- रसगंगाधर, भूमिका, सं० पं० दुर्गाप्रसाद, निष्ठा०

बम्बई, १९३६

भी काव्य या ग्रन्थों का प्रणयन कवि या विद्वान् लोग करके उनके नाम से प्रकाशित कर देते थे। अतः इन दोनों टीकाओं के प्रणीता नागेश भट्ट हैं यह बात सत्य मानी जा सकती है।

इसके अनन्तर एक विहंगम दृष्टि हम नागेश भट्ट के ग्रन्थों के पौर्वापर्य पर भी डालना चाहते हैं। वस्तुतः नागेश भट्ट ने एक विशद वाङ्मय की रचना की है। अतः यह एक महत्त्वपूर्ण चर्चा का विषय है नागेश जी ने इन ग्रन्थों में किसकी रचना कब और अपनी किस ग्रन्थ से पूर्व और किस से बाद में की। इस विषय में पूना के उद्भट विद्वान् डा० पी० के० गोडे ने चर्चा की है जिनके अनुसार डा० कपिल देव शास्त्री ने परमलघुर्मञ्जूषा की भूमिका में नागेश जी के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का काल गणनात्मक क्रम प्रस्तुत किया है। डा० पी० के० गोडे ने हस्तलिपियों की तिथियों के आधार पर इस तथ्य का विवेचन किया है। अतः इन तिथियों को अनुमान से ही सिद्ध किया है।

डा० के०डी० शास्त्री ने डा० गोडे को आधार मानकर नागेश जी के ग्रन्थों का जो काल निर्धारण किया है वह इस प्रकार है :

(क) वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा तथा महाभाष्य प्रदीपोद्योत

१७००-१७०८ ई०

१- The Relative chronology of some works of Nagoji Bhatta
Printed in Studies in Indian Literary History Vol.III
pp 212-219, Poona, 1956.

२- देखिए- परमलघुर्मञ्जूषा की भूमिका पृ० १८, १९ संपा० डा० कपिलदेव शास्त्री
सुहृद्गीत , १९७५

३- देखिए- परमलघुर्मञ्जूषा, भूमिका पृ० १८-१९

.. ..

(स) भानुदत्त कृत रसमंजरी की नागेशमट्ट कृत टीका , १७१२ ई०

से पूर्व

(ग) रसगंगाधर टीका १७०० ई० के पश्चात्

(घ) काव्यप्रदीपोद्योत १७०० ई० के आसपास

(ङ०) अक्षरचिन्तन १७२२ ई० से पूर्व

(च) लघुमञ्जूषा (यह ग्रन्थ वं०सि०म० तथा बृ०श० शै० के बाद की रचना है । इसका समय लगभग १७००-१७०८ ई०)।

(छ) लघुशब्देन्दुशेखर - यह ग्रन्थ बृहच्छब्देन्दुशेखर के बाद लिखा गया है । हममें नागेशकृत महाभाष्यप्रदीपोद्योत टीका (१७००-१७०८) का निर्देश मिलता है । अतः लघुशब्देन्दुशेखर को १७०० ई० के बाद का मानना होगा ।

(ज) परिभाषाेन्दुशेखर- यह ग्रन्थ वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा, महाभाष्य प्रदीपोद्योत तथा बृहच्छब्देन्दुशेखर के बाद की रचना है, क्योंकि इन तीनों ग्रन्थों का निर्देश परिभाषाेन्दुशेखर में मिलता है ।

(फ) लघुशब्देन्दुशेखर - १७२१ ई० से पूर्व

(ब) काव्यप्रदीपोद्योत - १७०० ई० के बाद तथा १७५४ से पूर्व

केवल उपर्युक्त ग्रन्थों का ही काल निर्धारित किया है । इन ग्रन्थों में बृहच्छब्देन्दुशेखर के निर्माण काल के विषय

में प्रत्यक्षा रूप में उक्त दोनों विद्वानों में से किसी ने विचार नहीं किया है ।
वस्तुतः यह एक महत्त्वपूर्ण समस्या है कि वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा एवं बृह-
च्छब्देन्दुशेखर तथा महाभाष्यप्रदीपोद्योत का रचना क्रम क्या है ?

इन ग्रन्थों का पौर्वापर्य निर्धारित करना
ऐसी स्थिति में और भी अधिक कठिन हो जाता है जब स्वयं ग्रन्थ निर्माता
नागेश जी ने इन तीनों ग्रन्थों में परस्पर एक दूसरे का निर्देश किया है । यदि
कदाचित् ऐसा मान लिया जाय कि उक्त तीनों ग्रन्थों की रचना नागेश जी
ने एक साथ ही की होगी तथा प्रसंगवश एक दूसरे का संकेत उन्होंने इन ग्रन्थों
में कर दिया होगा । यह मानने में सदैव उत्पन्न हो जाता है कि तीन विशद
एवं प्रादि ग्रन्थों का प्रणयन एक ही समय में एक साथ करना असम्भव प्रतीत
होता है । हम यहाँ इन तीनों ग्रन्थों के परस्पर एक दूसरे में निर्देशों को
उद्धृत करते हैं :

१- वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा में अनेक स्थलों पर शब्देन्दुशेखर
का निर्देश मिलता है ।

(क) इतिस्पष्टम् अस्मत्कृतशब्देन्दुशेखरे^१ ।

(ख) इत्यादिस्पष्टम् अस्मत्कृतशब्देन्दुशेखरे ।

(ग) इति निरूपिताम् शब्देन्दुशेखरे ।

१- देखिए- वै० गि० म० सम्पादक डा० के०डी० शास्त्री, कुरुक्षेत्र, १९८५ पृ० १७६

(ख) वही पृ० २०५

(ग) वही पृ० २१३

(घ) इत्यादि पदा वृणन्तु शब्देन्दुशेखरे स्पष्टम् ।

(ङ०) इत्यधिकं शब्देन्दु शेखरे द्रष्टव्यम् ।

(च) इति निरुक्तम् शब्देन्दुशेखरे ।

२- बृहच्छब्देन्दुशेखर में भी मञ्जूषा का निर्देश मिलता है ।

“प्रकारान्तरेणोक्तत्पदानिरूपणं तद्वृणन्तु कैशेषवादे मञ्जूषायां द्रष्टव्यम् ।”

महाभाष्यप्रदीपोद्योत में बृ०श० शै० खं
मञ्जूषा दोनों का निर्देश मिलता है -

“अत्रयद्वक्तव्यम् तद्वृणन्तु सूत्रेशब्देन्दुशेखरे, शक्तिवादेमञ्जूषायाश्च विस्तरेण निरुक्तम् ।”

तथा

“अधिकं मञ्जूषायां द्रष्टव्यम् ।” ४

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि
महाभाष्य प्रदीपोद्योत का निर्माण बृ०श० शै० और मञ्जूषा के बाद किया
होगा । क्योंकि उद्योत में शब्देन्दुशेखर खं मञ्जूषा का निर्देश मिलता है ।

१- द्रष्टव्य (घ) वै०सि०म० संपा० डा० के०डी० शास्त्री, कुरुक्षेत्र, १९८५

पृ० २१४

(ङ०) वही , पृ० २१४

(च) वही पृ० २४१

२- देखिए- बृ०श०शै० प्रथम भाग, संपा० डा० सीताराम शास्त्री, वाराणसी, १९६०

पृ० ३६५

३- देखिए- महाभाष्य, चतुर्थ खण्ड, ४-१-१६२ , निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४२

४- देखिए- वही , ४-३-१०१ पृ० २१५

पृ० १५१

किन्तु गम्भीर समस्या तो वृ०श०शै० एवं मंजूषा के परिवर्तन की है। विशेष रूप से ऐसी दशा में जबकि वृ०श० शै० का निर्देश मंजूषा में अनेक स्थलों पर मिलता है।

ऐसी स्थिति में हम यही कह सकते हैं कि वृ०श० शै० एवं मंजूषा की रचना नागेश जो ने कुछ अंतर रखते हुए साथ-साथ ही की होगी। अतः उक्त तीनों ग्रन्थों का क्रम यह होना चाहिए।

वृ०श०शै०, वैयाकरण सिद्धान्त मंजूषा एवं महाभाष्यप्रदीपौधोत। शेष लघुमंजूषा, लघुशब्देन्दुशेखर एवं परि-माणेन्दुशेखर इत्यादि ग्रन्थों की रचना उक्त तीनों ग्रन्थों के बाद की है। डा० पी०के० गोटे के विवेचन से स्पष्ट है। नागेशभट्ट के ग्रन्थ प्रणयन का काल डा० पी०वी० काण् ने १७०० ई० से १७५० ई० तक का माना है।

इस अध्याय में नागेश भट्ट के जीवन, देश-काल तथा उनकी कृतियों के बारे में विचार करने के अन्तर हम आगे अध्यायों में क्रमशः उनके प्रमुख ग्रन्थों के आधार पर व्याकरणशास्त्र को उनके मिलनेवाले योगदान विषयक चर्चा करेंगे।

तृतीय अध्याय

संस्कृत व्याकरण दर्शन की परम्परा में म०म०

नागेश भट्ट का मुख्यतम स्थान है । तथा नागेश भट्ट प्रणीत वैयाकरण
सिद्धान्तमञ्जूषा संस्कृत व्याकरण दर्शन का विशिष्टतम ग्रन्थ है । तत्पुं स्वं
परमलघु संस्करणों में युक्त वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा में संस्कृत व्याकरण की
दार्शनिक समस्याओं पर स्फुट रूप में विचार किया गया है । संस्कृत व्याकरण
दर्शन के लिए इस ग्रन्थ की उपादेयता का अनुमान इसकी लोकप्रियता एवं गवर्न-
भाषिक प्रतिष्ठा से और भी दृढ़ हो जाता है । नागेश जी के तीनों मञ्जूषा
ग्रन्थों की यदि संस्कृत व्याकरण दर्शन में हटा दिया जाय तो व्याकरण दर्शन
प्रायः निस्सारखण्ड प्रतीत होने लगेगा । भर्तृहरि के 'वाक्यपदीय' के बाद
नागेशभट्ट की तीनों मञ्जूषाएँ इस विषय पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माने जाते हैं ।
यद्यपि काण्डभट्ट का वैयाकरणभूषण एवं वैयाकरणभूषणगार भी इस विषय
के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं किन्तु मञ्जूषाओं का स्थान अविरोधित है ।

तीन मञ्जूषाएँ

परमवैयाकरण नागेशभट्ट ने वैयाकरणसिद्धान्त-
मञ्जूषा की रचना तीन स्वरों में की थी । कुछ समय पूर्व विद्वानों की जो सन्देह
था कि मञ्जूषा तीन स्वरों में है अथवा दो स्वरों में है- इस सन्देह का निवारण
बाज तीनों मञ्जूषाओं के मुद्रित रूप में उपलब्ध होने पर सहज ही हो जाता है ।
चिरकाल से पठन-पाठन में लघुमञ्जूषा एवं परमलघुमञ्जूषा ही व्यवहृत हो रही
थी , कदाचित् इसीलिए यह भ्रम कुछ लोगों की हो गया कि नागेश भट्ट ने

दो मंजूषाओं का ही प्रणयन किया था । किन्तु आज वं०पि० म० के प्रका-
शित हो जाने पर यह प्रान्ति जनायाण ही दूर हो जाती है ।

तीनों मंजूषाओं के प्रणीता के विषय में
नागेश भट्ट की ही झका प्रणीता मानना निर्विवाद है । इस विषय में
डा० कपिल देव शास्त्री ने प०त०म० की नागेश भट्ट प्रणीत मानने में गन्देह
व्यक्त किया है । परन्तु हमारे मत में डा० शास्त्री की यह शंका 'वदती-
व्याघात' ही है । वस्तुतः ऐसा कोई भी कारण नहीं है जिससे कि पलम०
की नागेश प्रणीत मानने में गन्देह व्यक्त करता हो । डा० शास्त्री ने कुछ
सम्भावनाएँ इसके नागेश प्रणीत होने के गन्देह के लिए दी हैं वे तर्क संगत
प्राति नहीं होती हैं ।

पलम० के प्रणीता नागेश भट्ट

डा० शास्त्री जी के गन्देह का मूल आधार
उन्होंने वं०भू० म० के पाद्य पलम० का कौन-कौन से स्थलों पर शब्दशः पाद्य की माना
है । दूसरा तर्क डा० शास्त्री जी ने लघुमंजूषा एवं पलम० में कुछ स्थलों पर मत
विरोध होने का दिया है । डा० शास्त्री जी का मन्तव्य है कि लघुमंजूषा के
कई गिहान्तों का पलम० में स्पष्टन मिलता है तथा पलम० में नैयायिकों एवं
मीमांसकों के मतों को पूर्व पन्ना के रूप में प्रस्तुत करते हुए मीमांसकों एवं नैया-
यिकों के मतों का भी बालोडन कर दिया है । जो कि ल०म० एवं वं०पि०म०
में प्रतिपादित शैली से भिन्न है । उक्त दोनों तथ्यों की समीक्षा करते हुए
पलम० की नागेश भट्ट की कृषि सिद्ध करने के लिए हम निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत
करते हैं ।

परमलघुमंजूषा क्योंकि नागेश भट्ट ने बहुत

बाद में लिखी थी तब तक वै०पि०म० एवं लघुमंजूषा की विद्वानों में प्रसिद्धि हो चुकी थी। अतः सम्भव है कि कुछ लोगों ने उक्त दोनों मंजूषाओं के फलों पर जाँच कर ली। जिनका समाधान बाद में करते हुए नागेश जी ने पलम० की रचना की होगी। क्योंकि यह ग्रन्थ उस समय लिखा गया जब शब्द दर्शन सम्बन्धी विचारधाराएँ पूर्ण विकसित थीं। अतः नैयायिकों एवं मीमांसकों ने भी शब्द के दार्शनिक स्वरूप पर विचार कर ली। उसी समय नागेश जी ने अपनी प्रसिद्धि दोनों मंजूषाओं के कुछ भिन्न शैली में अन्य विद्वानों के फलों का सम्मिलन करते हुए इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। अपने फल के सम्बन्ध में काण्डभट्ट के किन्हीं सिद्धान्तों को यथावत् इस ग्रन्थ में उद्धृत कर दिया हो यह स्वाभाविक ही है। दूसरे जहाँ कहीं लघुमंजूषा के सिद्धान्तों के साथ विरोध प्रतीत होता है वह इसलिए सम्भव है कि उपर्युक्त परिस्थितियों में नागेश जी ने इस ग्रन्थ की रचना की तो स्वयं कुछ विरोध या सिद्धान्तों में भेद की आवश्यकता देखते हुए तदनु रूप ही इस ग्रन्थ में सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

अतः हम कह सकते हैं कि तीनों मंजूषाओं का प्रतिपाद्य विषय एक ही है किन्तु तीनों में अभिव्यक्ति के माध्यम बदले हुए हैं। अतएव तीनों मंजूषाएँ नागेश भट्ट ने ही लिखी हुई हैं। इस विषय में तीनों मंजूषाओं के मंगलार्चन श्लोक एवं अन्तिम पुष्पिकारं वृद्ध प्रमाण हैं। यहाँ वै०पि०म० एवं ल०म० के मंगल श्लोक एवं पुष्पिकाओं के उद्धृत करने की इसलिए आवश्यकता नहीं है कि उक्त दोनों मंजूषाओं की नागेश प्रणीत मानने में कोई मन्देह नहीं है। अर्थात् प०ल०म० का मंगल श्लोक एवं पुष्पिका द्राष्टव्य है।

परमलघुमंजूषा के आरम्भ में यह श्लोक

लिखा है -

शिवंत्वा हि नागैर्नातिन्या परमात्मः ।
वैयाकरणविद्वान् मूर्खानां विरक्तो ॥ १

तथा अन्त में ग्रन्थ की समाप्ति पर इस प्रकार पुष्पिका मिलती है -

इति श्री शिवभट्टसुत एतदेवीगर्भजनागेशभट्ट
विरक्ता परमलघुमूर्खानां समाप्ता ॥ २

प्रचुर मात्रा में इस प्रकार के स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए पलम० को नागेशभट्ट द्वारा विरक्ति मानने में किंचित् भी सन्देह नहीं किया जा सकता ।

वं०पि०म० के कुछ अपरपर्याय

नागेशभट्ट विरक्ति वं०पि०म० क्योंकि अभी तक वसुधित हो थी और पाण्डुलिपि के रूप में अधिक प्रसिद्ध नहीं थी । संभवतः इंगोलिस अधिकांश विद्वानों को इसके वास्तविक नाम का ज्ञान नहीं था । अतः यत्र तत्र उपलब्ध निर्दोशों में यह शक्ति तो मिलता था कि म०म० नागेश भट्ट प्रणीत ल०म० एवं पलम० है भिन्न एक गुरुमूर्खाना या बृहन्मूर्खाना भी है । कुछ विद्वान् ऐसे भी थे जो बृहन्मूर्खाना को तो मानते थे भले ही वे उसे नागेश भट्ट प्रणीत न मानते ही । ऐसे विद्वानों में मुख्य रूप से डा० रामहृदय त्रिपाठी का नाम उल्लेखनीय है । डा० त्रिपाठी जी का मन्ताव्य है वं०पि० ल० म० का ही दूसरा नाम वं०पि०म० है। गुरुमूर्खाना इनके भिन्न कोई ग्रन्थ है ।

१- परमलघुमूर्खाना- मंगलाचरण पृ० १

२- वही अन्तिम पुष्पिका

३- द्रष्टव्य- संस्कृत व्याकरण दर्शन, डा० रामहृदय त्रिपाठी, प्रथमाध्याय,

किन्तु वास्तविकता यह है कि परमलघुर्मञ्जुणा एवं वं०मि० लघुर्मञ्जुणा के भिन्न वं०मि०म० हैं तथा इसी की बृहन्मञ्जुणा या गुरुर्मञ्जुणा के नाम से भी जाना जाता है जो कि आज मुद्रित रूप में उपलब्ध है। वं०मि०म० का सर्वप्रथम मुद्रण का कार्य वाराणसी के डा० कालिका प्रसाद शुक्ल जी ने सन् १९७७ ई० में सम्पादित किया था। दूसरी बार इसके मुद्रण कार्य का सम्पादन डा० कपिलदेव शास्त्री ने कुरुक्षेत्र में सन् १९८५ ई० में किया है। डा० शास्त्री द्वारा सम्पादित वं०मि०म० का आलोचनात्मक संस्करण निश्चित ही एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में भूमिका में डा० शास्त्री जी ने वं०मि०म० की कई मुख्य समस्याओं पर विचार किया है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता इस ग्रन्थ की यह है कि ग्रन्थ के अन्त में डा० शास्त्री जी ने परिशिष्ट के रूप में वं०मि०म० एवं वैयाकरण भूषण का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। दूसरे परिशिष्ट में वं०मि०म० एवं वं०मि०ल०म० का तुलनात्मक विवरण प्रकरण के क्रम में दिया है। अतः उक्त संस्करण शोधार्थियों के लिए एक वरदान सिद्ध होता है जिसका श्रेय डा० कपिलदेव शास्त्री जी को जाता है।

वं०मि०म० एवं स्फोटवाद

वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जुणा को यदि प्रतिपाद्य की दृष्टि से देखा जाय तो समग्र ग्रन्थ में स्फोट की ही चर्चा की गई है। 'स्फोटमयं जगत्सर्वम्' की धारणा को लेकर नागेश जी ने इस ग्रन्थरत्न का निर्माण किया है। अतः स्फोट को विभिन्न दृष्टिकोणों से लेकर ने इस ग्रन्थ में निरूपित किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में स्फोट ही चर्चा होने से इस ग्रन्थ की 'स्फोटवाद' ही नाम का यद्यपि कोई अंग नहीं है।

परन्तु नागेशभट्ट द्वारा ही लिखित स्वतन्त्र रूप में 'स्फोटवाद' नामक ग्रन्थ की मिलता है। स्वल्पस्वरूप वाले इस ग्रन्थ का सम्पादन पं० बी० कृष्णामाचार्य ने सन् १९४६ ई० में किया हुआ है।

उपरोक्त स्थिति में कुछ विद्वानों ने सन्देह व्यक्त किया है कि वं० गि० म० का ही अपरनाम स्फोटवाद है। वस्तुतः उक्त दशा में यह सन्देह करना वापसतः उचित नहीं लगता है। क्योंकि एक ही लेख के लिये हुए पुस्तक रूप में दोनों ग्रन्थ उपलब्ध हैं। यद्यपि प्रतिपाद्य की दृष्टि से वं० गि० म० को भी स्फोटवाद ही माना जा सकता है वह एक अलग बात है। काः इस ग्रन्थ में स्फोट का ही निरूपण है, इसलिए स्फोटवाद कहना अतृप्त नहीं है। किन्तु 'स्फोटवाद' नाम से उपलब्ध ग्रन्थ की मूला में सन्देह करना भी इसलिए उचित नहीं है कि यह ग्रन्थ रूप में उपलब्ध है। वं० गि० म० से विषय साम्य रखते हुए भी शैली की दृष्टि से स्व स्वरूप की दृष्टि से उनकी भिन्नता रहता है।

वं० गि० म० में स्फोट का निरूपण व्यास शैली में तथा भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से किया है। जबकि स्फोटवाद में स्फोट का संक्षिप्त परिचय मात्र दिया है। सम्पूर्ण स्फोटवाद ग्रन्थ में पाँच मुख्य विभाग करते हुए आठ स्फोटों की संक्षिप्त चर्चा ही की है। ये पाँच मुख्य विभाग निम्नवत् हैं -

- १- वर्णस्फोट) सामान्य रूप से परिचय
- २- फलस्फोट) ही दिया है।
- ३- वाक्यस्फोट - शक्तिनिरूपण स्व
लक्षणा तथा तात्पर्य
बादि का संक्षिप्त
विचार किया है।

४- वल्लभस्फोटनिरूपण

५- जातिस्फोट निरूपण

कतख उक्त ग्रन्थों के रहते हुए "स्फोटवाद" को वैयाकरणगिद्वान्तर्मज्ञाना का सारांश कह सकते हैं। किन्तु प्रतिपाद्य की प्रधानता के कारण वं०सि०म० को स्फोटवाद कहने से स्फोटवाद ग्रन्थ की पूर्ण सत्ता मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। क्योंकि स्वयं ग्रन्थकार नागोजिमट्ट ने वं०सि०म० की पुष्पिका में इसे स्फोटवाद कहा है। उदाहरणार्थ वं०सि०म० की पुष्पिका प्रस्तुत है-

“इति श्रीमदुपाध्यायौफामकशिवमट्टस्तुतनागेशमट्ट कृतौ
वैयाकरणगिद्वान्तर्मज्ञानास्यः स्फोटवादः समाप्तः ॥”

तीन मंजूषाओं का रचनाक्रम एवं रचनाकाल

एक ही लेखक द्वारा लिखे तीन मंजूषा ग्रन्थों का रचनाक्रम क्या है ? यह सख्त शंका हो सकती है। यद्यपि यह प्रसिद्ध है कि मंजूषाओं का पारिवापर्य क्रम क्रमशः वं०सि०म०, वं०सि०ल०म० एवं परमलघुमंजूषा यही है। किन्तु इसके समर्थक साक्ष्य जब तक न मिलें तब तक किसी तथ्य को पूर्ण रूप से सही नहीं कहा जा सकता।

क्या यह नहीं हो सकता कि लघुमंजूषा एवं परमलघुमंजूषा को रचना नागेश जी ने पहले करलो हो जाएं और इस विषय की विस्तृत बर्ता पुनः वं०सि०म० में की हो। यह इसलिए भी संभव हो सकता

है कि लघुमंजूषा एवं परमलघुमंजूषा ही पहले पठन-पाठन में व्यवहृत हो रही थी, वं०मि०म० नहीं। जबकि ल०म० एवं प०ल०म० की अपेक्षा वं०मि०म० की शैली में विषय को स्पष्ट करने की सुगमता अधिक है। अर्थात् सरल शैली में विद्यमान ग्रन्थ के रहते हुए दुरुह शैली के ग्रन्थों का प्रचलन सर्वप्रथम क्यों हुआ ?

इसका कारण संभवतः यही रहा होगा कि वं०मि०म० की रचना तब तक नहीं हुई होगी इसलिए ल०म० एवं प०ल०म० का ही प्रचलन पहले हुआ। और वं०मि०म० की रचना नागेश जी ने बाद में ल०म० एवं प०ल०म० में वर्णित विषय को सरल शैली में प्रस्तुत करते हुए उसका विवरण विस्तृत रूप में करने के लिए की थी।

किन्तु ऐसा है नहीं वस्तु स्थिति तो यही है कि वं०मि० म० की रचना नागेश जी ने पहले की थी। इसके बाद उगी विषय को कुछ सामासिक शैली में प्रस्तुत करते हुए तथा वं०मि०म० में उपस्थित कुछ सिद्धान्तों को भिन्न रीति से प्रस्तुत किया है। इन दोनों ग्रन्थों के प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने के अन्तर तथा अन्य स्तावलम्बियों द्वारा उक्त ग्रन्थों के कुछ सिद्धान्तों पर आलोचन किए जाने पर नागेश जी ने उन सभी आलोचनों का समाधान करते हुए पूर्ण रूप से दार्शनिक शैली में प०ल०म० का निर्माण किया है।

अनेकों ऐसे मान्य उपलब्ध हैं जिनमें यह सिद्ध होता है कि वं०मि०म० की रचना पहले हुई है। ल०म० एवं प०ल०म० की रचना इसके बाद में हुई है।

तीनों मंजूषा ग्रन्थों के नामों से ही यह सिद्ध हो जाता है कि पहले वं०मि०म० की रचना हुई इसके बाद क्रमशः वं०मि०ल०म० एवं प०ल०म० की रचना की गयी थी। क्योंकि वं०मि०म० के रहते हुए ही दूसरी मंजूषा के साथ लघुविशेषण लगाया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि

इसके अतिरिक्त गुरुमंजूषा भी है जिसकी अपेक्षा यह लघु है ।

द्वारा प्रमाण है नागेश भट्ट के प्रधान शिष्य एवं लघुमंजूषा के टीकाकार वैष्णव पायगुण्डे के व्याख्या का यह वाक्य है । श्री वैष्णव जी ने लघुमंजूषा के मंगलाचरण में प्रयुक्त लघुशब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है “ क्वेन गव्यपि एका मंजूषा अस्तीति सूक्तिम् ” ।

इसी प्रकार परमलघुमंजूषा के साथ परम विशेषण लघुमंजूषा के होने पर उम्मे पार्थक्य स्पष्ट करने के लिए लाया है ।

द्वारा प्रमाण मंजूषा में निर्दिष्ट अन्य ग्रन्थों के नामों से तत्तद् ग्रन्थों से इसका पश्चाद्भावित्व सिद्ध करता है । वै०पि००० में बहुधा शब्देन्दुशेखर का उल्लेख मिलता है जो कि बृ०श०शे० की ओर संकेत करता है । बृ०श०शे० नागेश भट्ट की प्रथम रचना है । यह हम द्वितीयाध्याय में हो सिद्ध कर चुके हैं ।

इसके अतिरिक्त लघुमंजूषा में जो शब्देन्दुशेखर का निर्देश मिलता है वह विषय के अनुसार ल०श०शे० की ओर संकेत किया गया है । जिसे डा० सीताराम शास्त्री ने बृ०श०शे० की भूमिका में एीदाहरण स्पष्ट किया है। उदाहरणार्थ हम उन्में से कुछ को उद्धृत करते हैं -

“ लघुमंजूषा के मुख्य विचार प्रकरण में लिखा है -
“ नमस्करोति देवान् ” इत्यत्रोपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसीति

१- नागेशभट्ट विदुषा नत्वाणाम्भं शिवं लघुः ।

वैयाकरणसिद्धान्त मंजूषीय विरच्यो ॥ वै०पि०ल०म०, पृ० १

२- प्रस्तुत प्रबन्ध, द्वितीयाध्याय पृ०

न्यायात्कर्मणि द्वितीयेति शब्देन्दुशेखरेष्वाष्टम् ॥ **

उक्त की की व्याख्या करते हुए वंननाथ पायगुण्डे ने कला टोका में लिखा है-

“ एकस्या स्व उपपदविभक्तित्वे , कारकविभक्तित्वे
चायं न्याय इति तु न युक्तम् । नमस्यति देवानित्यत्रैतत्परिभाषा-
पन्यासपरभाष्यविरोधात्, सहयुक्ते इत्यादि सूत्रस्थभाष्यविरोधाच्च ।
तदाह शब्देन्द्रिति । ”

कला टोका में उद्धृत यह पाठ ल०श०शै० में
यथावत् मिलता है बृ०श०शै० में नहीं । बृ०श०शै० में हमने भिन्न पाठ मिलता
है -

“ स्तेन एकस्या स्वोपपदविभक्तित्वे कारकविभक्तित्वे
चायं न्याय इत्यपास्तम् । किंच “ एकस्यास्वेत्याकीकारे
नमस्यतिदेवानित्यत्र परिभाषापन्यासपरभाष्यविरोधः
सहयुक्ते इत्यादिसूत्रभाष्यविरोधश्च । ”

हमके अतिरिक्त अन्य उदाहरण भी डा० गीताराम शास्त्री ने दिए हैं जिनमें
यह प्रमाणित होता है कि ल०म० में निर्दिष्ट शब्देन्दुशेखर शब्द ल०श०शै०
का ही मूल नामेश जी ने किया है । अतः लघुमञ्जूषा की रचना ल०श०शै० के
बाद हुई है ।

डा० पी०के० गौड़ के अनुसार ल०श०शै० की
रचना १७२० ई० तक हुई थी^२ । जबकि वं०मि०म० की रचना १७०० ई० तक

१- द्रष्टव्य- बृ०श० शै० , भूमिका , वाराणसी, १९६० , पृ० ४२, ४३, ४४

२- Chronology of Nagjibhatta by Dr. P.K. Gode

ही चुकी थी। इसका प्रमाण सन् १७०८ ई० में लिपिकद की गई वं०मि०म० की पाण्डुलिपि है। अतः यह सिद्ध ही है कि ल०म० की रचना वं०मि०म० के बाद लगभग १७१० ई० के आस पास की होगी।

वं०मि०म० एवं वं०मि०ल०म० का क्रम निश्चित हो जाने पर प०ल०म० का इन दोनों से पश्चाद्भावित्व स्वतःसिद्ध ही है। प०ल०म० के विषय में डा० गोडे ने भी स्पष्ट निर्देश तो नहीं दिया है। परन्तु इसकी रचना सम्भवतः सन् १६२० के आस-पास ही हुई होगी यही अनुमान किया जाता है।

तीनों मंजूषा ग्रन्थों का प्रतिपाद्य

नागेश भट्ट प्रणीत तीनों मंजूषाओं में प्रतिपाद्य साम्य होने पर भी कुछ भिन्नताएँ हैं। यद्यपि तीनों मंजूषाओं में स्फोट की क्वाँ ही की गयी है। किन्तु एक ही लेखक के द्वारा एक ही प्रतिपाद्य की लेकर भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से तीन ग्रन्थों की रचना किए जाने पर कुछ साम्य एवं वंशस्य होना स्वाभाविक है। इसी के परिणामस्वरूप इन तीनों ग्रन्थों की उक्तियों में कहीं कहीं विरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

वं०मि०म० में स्फोट का निपण चाँदह प्रकरणों में ग्रन्थ को विभाजित करके किया है। विभिन्न माध्यमों से स्फोट का प्रतिपादन इस ग्रन्थ में किया है। व्यास शैली में लिखे गए इस ग्रन्थ में स्फोट के प्रायः सभी पन्नों पर विचार किया गया है। डा० कपिल देव शास्त्री ने वं०मि०म० का जो संस्करण निकाला है उसे उन्होंने प्रमुख चार भागों में विभक्त करके दिया है। डा० शास्त्री ने प्रमुख चार भाग इस प्रकार विभक्त किए हैं। प्रथम भाग को चाँदह प्रकरणों में सम्मिलित किया है। वं०मि०म० के प्रथम भाग की प्रकरण योजना इस प्रकार है -

- १- स्फोट सामान्य निरूपण
- २- शक्ति निरूपण
- ३- लक्षणानिरूपण
- ४- व्यञ्जना निरूपण
- ५- धात्वर्थनिरूपण
- ६- निपातार्थनिरूपण
- ७- तिङ्गण्यनिरूपण
- ८- घनाद्यर्थनिरूपण
- ९- कृदर्थनिरूपण
- १०- नामार्थनिरूपण
- ११- सुबर्थनिरूपण
- १२- घनासंज्ञा निरूपण
- १३- व्यञ्ज्यार्थनिरूपण
- १४- तद्धितार्थनिरूपण

वै०पि०म० के द्वितीय भाग में केवल 'सप्तष्ट-
पदवाक्यस्फोट' का निरूपण किया है। तीसरे भाग में अष्टष्टपदवाक्य-
स्फोट की चर्चा है तथा अन्तिम कर्तुं भाग में जाति स्फोट का निरूपण
किया है। वै०पि०म० के कई मितान्त ऐसे भी हैं जिनका रचयिता नागेशभट्ट
ने वै०पि०ल०म० में संपादन किया है।

वै०पि०ल०म० जैसाकि इस ग्रन्थ के नाम से
प्रतीत होता है कि यह वै०पि०म० का संपादित किया हुआ संस्करण
होना चाहिए। वास्तव में यह वैसा ही नहीं है। यद्यपि संपादित किया

१- वै०पि०म० , भूमिका पृ० २१-२२ , संपा० डा० कपिलदेव शास्त्री,
कुरुक्षेत्र , १९८५

की प्रक्रिया को इस ग्रन्थ में रखा ही है। किन्तु जेक स्थलों पर वै०सि०म० है भिन्नता रखी हुए गुरुमंजूषापरन्वस्त सिद्धान्तों को और भी विस्तार में स्पष्ट किया है। इसका विस्तृत विवेचन तो हम स्वतन्त्र रूप से अन्य शोध प्रबन्ध में करेंगे। जोकि पी-एच०डी० के लिए हमने विषय नियत कर रखा है। लघुमंजूषा यद्यपि वै०सि०म० की अपेक्षा प्रकरण योजना की दृष्टि से लघु कहो जा सकती है किन्तु स्वल्प एवं विषय की दृष्टि से यह अत्यन्त गूढ़ एवं विरल ग्रन्थ है। लघुमंजूषा को मुख्य आठ प्रकरणों में विभाजित किया है। जबकि वै०सि०म० में कुल सत्रह प्रकरण मिलते हैं। गुरुमंजूषा में रफौट का ही प्रतिपादन सीधे रूप में किया है किन्तु लघुमंजूषा में अन्य मौलिक एवं नैयार्थिक वादि मतों की बालोचना करते हुए अपने मत का उपस्थापन किया है। इस दृष्टि से लघुमंजूषा का महत्त्व और भी अधिक हो जाता है।

इसी प्रकार परमलघुमंजूषा में भी रफौट का ही विवेचन किया गया है।

शैली एवं विवेचन की दृष्टि से यह ग्रन्थ मंजूषा एवं लघुमंजूषा से बहुत भिन्नता रखता है। यद्यपि प्रकरण योजना भी प्रायः समान है। प०ल०म० में बारह प्रकरण दिए हैं। प०ल०म० पूरी तरह से वार्षनिक शैली में लिखा गया ग्रन्थ है। काण्डभट्ट के वैयाकरण-भूषण एवम् जेक स्थलों पर शब्दशः एवम् रखी हुए यह ग्रन्थ वैयाकरण-भूषणएवम् शैली में प्रमाणित करता है। नागेश जी के तीनों मंजूषा ग्रन्थों का ऐतिहासिक अध्ययन करने पर तो विभिन्न भिन्नतार स्पष्ट

दृष्टिगोचर होती है। किन्तु आपाततः प्रकरण योजना में भी तीनों ग्रन्थों में भिन्नता है। उदाहरणार्थ हम तीनों मञ्जूषाओं की प्रकरण सूची यहां उद्धृत करते हैं :

क्रम सं०	वै०पि०म०	वै०पि०ल०म०	प०ल०म०
१	वर्णस्फोटसामान्य- निरूपण	- -	- -
२	शक्तिनिरूपण		शक्तिनिरूपण
३	लक्षणानिरूपण	वाच्यवाचकशक्तिविचार	लक्षणानिरूपण
४	व्यञ्जनानिरूपण	वाकाङ्क्षणादिविचार	व्यञ्जनानिरूपण
५	धात्वर्थनिरूपण	धात्वर्थविचार	स्फोटनिरूपण
६	निपातार्थनिरूपण	निपातार्थविचार	वाकाङ्क्षणादि- विचार
७	तिष्ठर्थनिरूपण	तिष्ठर्थविचार	धात्वर्थनिर्णय
८	मनार्थनिरूपण	- -	निपातार्थनिर्णय
९	बुद्धर्थनिरूपण	बुद्धर्थविचार	दशरत्नारादेशार्थ- निर्णय
१०	नामार्थनिरूपण	सुबन्ते प्रकृति- प्रत्ययार्थविचार	गुरुगुरुविर्णय कारार्थनिर्णय
११	सुबर्थनिरूपण		कारकनिर्णय
१२	समासशक्तिनिरूपण	वृत्तिविचार	नामार्थनिर्णय
१३	व्यञ्जार्थनिरूपण	- -	समासादिवृत्त्यर्थ
१४	तद्वितार्थनिरूपण	- -	
१५	सर्ववृत्तप्रवाच्य- स्फोटनिरूपण	- -	

- १६- वल्लभप्रसादजी की टीटनिरूपण - -
 १७- जातिस्फीटनिरूपण - -

नागेश प्रणीत वै०पि०म० के भिन्न वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा

संस्कृत व्याकरणशास्त्र के इतिहासकार पं०

युधिष्ठिर मीमांसक ने नागेशभट्ट विरचित वै०पि०म० के भिन्न भी एक वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा की सूचना दी है। जिसके प्रणीता का नाम उन्होंने ब्रह्मदेव बताया है। पं० मीमांसक जी ने इस ग्रन्थ की मद्रास के राजकीय पुस्तकालय में संगृहीत बताया है^१। यद्यपि पं० मीमांसक जी का मा पूर्ण निर्दुष्ट नहीं माना जा सकता क्योंकि स्वयं मीमांसक जी भी मन्देह^२ हैं।

मीमांसक जी ने यह ग्रन्थ प्रत्यक्ष देखा नहीं है। उन्होंने मद्रास पुस्तकालय की ग्रन्थ सूची के आधार पर ही इसका निर्देश किया है। सम्भवतः यह नागेश प्रणीत वै०पि०म० की ब्रह्मदेव कृत टीका ही और ग्रन्थसूची में ब्रह्मदेव के नाम से इसकी प्रकाशित कर दिया ही। यह स्वयं मीमांसक जी का भी मन्देह^३ है। अतः हमारे विचार में हम भी अब तक कुछ नहीं कह सकते जब तक कि इस ग्रन्थ के प्रत्यक्ष हमारा सामनात्कार नहीं होता।

संस्कृत व्याकरण के दार्शनिक ग्रन्थों में वै०पि०म० का स्थान

नागेश जी की वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा का

१- सं० व्या० शा० का इति० भाग २, पृ० ३६७

२- वही, (सूची पत्र भाग ३, खण्ड १ ए पृ० २७०४ संख्या १६४७)

३- वही,

स्थान संस्कृत व्याकरण की दार्शनिक परम्परा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। व्याकरण के दार्शनिक सिद्धान्तों पर आधारित चर्चप्रथम मनुहरि ने स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की थी। मनुहरि की वाचस्पतीय के अनन्तर संस्कृत व्याकरण की दार्शनिक परम्परा स्वतन्त्र रूप से पुनः चल पड़ी और इस परम्परा में अनेक विद्वानों ने ग्रन्थों का निर्माण किया। इस परम्परा में मनुहरि की वाचस्पतीय के बाद मञ्जूषा ही एक ऐसा अन्तिम प्रामाणिक ग्रन्थ है जो आज भी अपने सिद्धान्तों से संस्कृत व्याकरण दर्शन को समृद्ध बनाए हुए है। वं० गि० म० तथा लघु एवं परमलघुमञ्जूषासम्बन्धित सिद्धान्तों का आज तक कोई लच्छन लक्षा किसी प्रकार के बाणोप नहीं मिले हैं। मञ्जूषा की टीकाएँ भी कुछ विद्वानों ने लिखी हैं। उनमें निम्नलिखित टीकाओं के नाम उपलब्ध होते हैं। ये टीकाएँ कुछ मुद्रित हो चुकी हैं तथा कुछ अभी अमुद्रित हैं -

१- कला - वैष्णवाधपायगुण्डे (लघुमञ्जूषा टीका चालिम्बा, वाराणसी से मुद्रित)

२- कुञ्जिका - दुर्बलाचार्यः

.. ..

३- कुञ्जिका - कृष्णामित्र

४- टिप्पणी - रामनाथ

५- बृहन्मञ्जूषाविवरण - वैष्णवाधपायगुण्डे

६- - राजारामदीनित

७- - हरिराम

८- रत्नप्रभा - लघुमञ्जूषाटीका (लघुमञ्जूषाटीका)

१- द्रष्टव्य- महाभाष्य, मुद्रिका , पृ० १७ टिप्पणी नं० २ , निर्णयनागर

प्रेत संस्करण, बम्बई, १९५१

२- इनकी व्याख्या का नाम निर्देश नहीं किया है। देखिए- वही

३- इनकी व्याख्या का भी नाम नहीं लिखा है- देखिए- वही

- ६- ज्योत्स्ना - काशिकाप्रसाद शुक्ल (परमलघुमंजूषा टीका)
 १०- परमलघुमंजूषा व्याख्या - कपिलदेव शास्त्री^१
 ११- .. सदाशिव शास्त्री^२

महामहोपाध्याय नागेश पट्ट प्रणीत तीनों मंजूषाओं की आज पार्वभाषिक प्रतिष्ठा को देखते हुए तथा अध्ययन-अध्यापन में इन ग्रन्थों के सर्वाधिक प्रचलन को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि मंजूषा ग्रन्थ संस्कृत व्याकरण-दर्शन के अंतिम ग्रन्थ है ।

१- डा० कपिलदेव शास्त्री ने परमलघुमंजूषा का आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित किया है । डा० शास्त्री ने प०ल०म० का हिन्दी अनुवाद स्व हिन्दी में व्याख्या को है ।

२- The Parama Laghu Manjusa was edited by Sadasiva Sastri Joshi(1946) with his commentary and based on Laghuhmanjusa.
 See- PANINI - A survey of Research- by George Cardona.

चतुर्थ अध्याय

वैयाकरणशिरोमणि नागेशभट्ट प्रणीत शब्दे-
न्दुशेखरद्वय व्याकरण जगत् के मौलि रूप में जाने जाते हैं। नागेश जी के शब्दे-
न्दुशेखर का स्थान सिद्धान्त कौमुदी की ओक व्याख्याओं में सर्वापरि विराज-
मान है। वस्तुतः पाणिनीय व्याकरण के प्रक्रिया-क्रम में भट्टोजिदीप्ति की
वैयाकरणसिद्धान्त कौमुदी का सर्वाधिक महत्त्व है। काशिकावृत्ति एवं प्रक्रिया-
कौमुदी की अपूर्णताओं का सम्पाधान करते हुए भट्टोजिदीप्ति ने सिद्धान्त-
कौमुदी का प्रणयन स्वांगीण पूर्णता के साथ किया। भट्टोजिदीप्ति के
इस ग्रन्थ रत्न की ओकों विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण व्याख्याएं लिखी जिनमें स्वयं
भट्टोजिदीप्ति ने बालमनोरमा एवं प्रादुर्मानोरमा दो स्वोपज्ञ व्याख्याएं लिखीं।
इनमें प्रादुर्मानोरमा पर भी कई महत्त्वपूर्ण व्याख्याएं लिखी गईं जिनमें भट्टो-
जिदीप्ति के पाँत्र तथा नागेश जी के गुरु हरिदीप्ति ने शब्दरत्न नामक
व्याख्या लिखी। भट्टोजिदीप्ति की प्रादुर्मानोरमा पर भी पण्डितराज
जगन्नाथ एवं कृपाणि इत्यादि विद्वानों ने बाणीप उठाये हैं। जिनका
निराकरण करते हुए तथा कई स्थलों पर भट्टोजिदीप्ति में भी विरोध
दिखाते हुए नागेश भट्ट ने शब्देन्दुशेखर का निर्माण किया। जो विद्वन्मण्डल
में सर्वाधिक आदरणीय है एवं आज भी अन्तिम रूप में प्रामाणिक ग्रन्थ माना
जाता है। आजकल संस्कृत पाठशालाओं में अध्ययन अध्यापन में लघुशब्देन्दुशेखर
का ही सर्वत्र प्रचलन हो रहा है।

वृहच्छब्देन्दुशेखर एवं लघुशब्देन्दुशेखर

यह सर्वविदित है कि नागेश भट्ट जी ने शब्देन्दु-

शेसर की रचना दो रूपों में की है :

१- बृहच्छब्देन्दुशेसर स्वर

२- लघुशब्देन्दुशेसर

यह दोनों ग्रन्थ मुद्रितरूप में उपलब्ध हैं। वस्तुतः पहले नागेशजी ने बृहच्छब्देन्दुशेसर की रचना की थी। यह ग्रन्थ अति शुद्ध एवं अत्यन्त दीर्घकाय होने से व्याकरण के छात्रों के लिए सुवीज्य नहीं था। अंग्रेजों के कालान्तर में कदाचित् नागेश जी ने इस ग्रन्थ में न्यूनाधिक्य का अन्वेषण देखते हुए पुनः लघु शब्देन्दुशेसर का प्रणयन किया। और यही कारण है कि लघुशब्देन्दुशेसर का ही पञ्ज पाठन में सर्वत्र प्रयोग हो रहा है। प्रायः सभी संस्कृत पाठशाळाओं में व्याकरण के छात्रों को यह ग्रन्थ पाठ्यग्रन्थ के रूप में निर्धारित किया हुआ है।

बृहच्छब्देन्दुशेसर क्योंकि अव्ययन व्यापन के व्यवहार में प्रचलित नहीं था अंग्रेजों के सम्मतः इस ग्रन्थ का मुद्रण अभी तक नहीं हुआ था। अतः इसका मुद्रण सर्वप्रथम वाराणसी में सरस्वती भवन ग्रन्थमाला में डा० गीताराम शास्त्री ने १९६० ई० में किया हुआ है और आज यह ग्रन्थ एतन् सम्पूर्ण तीन भागों में उपलब्ध है। यह ग्रन्थ मूल मात्र प्रकाशित है। इसकी किसी टीका के विषय में अभी तक हमें कोई सूचना प्राप्त नहीं है। जबकि लघुशब्देन्दुशेसर की आज तक साँ में भी अधिक टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं जो मुद्रित एवं हस्तलिखित रूप में उपलब्ध हैं।

बृहच्छब्देन्दुशेसर या शब्देन्दुशेसर

यह एक महत्त्वपूर्ण चर्चा का विषय है कि

शब्देन्दुशेखरवास्तविक मूल नाम क्या है ? बृ०श०शै० ज्ञाना शब्देन्दुशेखर ।
 क्योंकि नागेश जी के उभय शब्देन्दुशेखरों का बोध प्रायः बृहत् स्व लघु विशेषण
 के साथ होता है । वस्तुतः किसी भी ग्रन्थ के नाम के विनायकस्य ग्रन्थकर्ता
 है बढ़कर और किसी को भी प्रमाण नहीं माना जा सकता । इस विचार की
 वास्तविकता तो यह है कि पहले श्रीनागेशभट्ट ने शब्देन्दुशेखर की ही रचना की
 थी जिसे आज बृहच्छब्देन्दुशेखर के नाम से जाना जाता है । यह मता दोनों बाह्य
 स्व वन्तःसाध्यों से प्रमाणित है । नागेश जी ने सर्वत्र इस ग्रन्थ को शब्देन्दु-
 शेखर के नाम से ही स्मरण किया है^१ । इसलिए हम यह कण्ठस्थ है कह सकते

१- देखिए- मनोरमाभाष्येह तन्त्रे शब्देन्दुशेखरम् ।
 (क)

- बृ०श० शै० भाग १, आरम्भ श्लोक सं० ३, पृ० १

सम्पादक- डा० सीताराम शान्त्री, वाराणसी, १९६०

(ख) शब्देन्दुशेखर ग्रन्थे पूर्वमर्द्धमपूरम् ॥

- वही , पूर्वार्द्ध भाग २ के अन्तिम श्लोक

सं० १ पृ० १५७४

“ शब्देन्दुशेखरः लौक्यं फणिभाष्योक्तिमुच्यते ॥ ”

- वही, श्लोक सं० २

(ग) “ इतिप्रोक्तलोफामक शिवभट्टस्तुस्तीगर्भनागेशभट्ट विरचिते सिद्धान्त
 कामुदीव्याख्यानशब्देन्दुशेखराख्ये पूर्वार्द्धमाप्तम् ॥ ”

- वही , भाग २ , पुष्पिका , पृ० १५७४

(घ) “ इतिप्रोक्तलोफामक शिवभट्टस्तु-स्तीगर्भनागेशभट्ट विरचिते शब्दे-
 न्दुशेखराख्ये सिद्धान्तकामुदी व्याख्यान उत्तरार्द्धे वैदिक प्रकरणं स्वरप्र-
 रणं च समाप्तिमाप्तम् ॥

- वही , भाग ३ , पुष्पिका, पृ० २३२८

है कि आरम्भ में इस ग्रन्थ का नाम सद्देन्दुशेखर ही था । कुछ कालान्तर है जब नागेश जी ने लघुसद्देन्दुशेखर की रचना की तब एक ही विषय पर एक लेखक के दो ग्रन्थ होने से तथा स्वरूप एवं विषय वस्तु तथा नाम की दृष्टि से लघुसद्देन्दुशेखर के रहने हुए सद्देन्दुशेखर की पारम्परिक प्रतीति के लिए उनके नाम वृद्ध विरोधना लगा दिया गया ।

सद्देन्दुशेखर के गाय लगाये गए वृद्ध विरोधना की केवल व्याख्यातु तथा सम्पादक मनःप्रसूत नहीं जा सकता है । क्योंकि स्वयं ग्रन्थकर्ता म०म० नागेशभट्ट ने भी अपने स० स० शै० में इसका स्मरण बृहच्छब्देन्दुशेखर के नाम से किया है । इसका प्रमाण लघुसद्देन्दुशेखर के पुराहं के अन्त में तथा स्माराय प्रक्रिया के अन्त में और कृन्ता के अन्त में दिए गए वे वाक्यांश हैं -

- (क) विस्तारं बृहच्छब्देन्दुशेखरे द्रष्टव्यः ।
 (ख) विस्तारं बृहच्छब्देन्दुशेखरे बोध्यः ॥

अतः उपर्युक्त मीमांसा विवेचन से स्पष्ट है कि लघुसद्देन्दुशेखर की तरह सद्देन्दुशेखर के विस्तार तथा व्यावृत्ति रहित जीव के लिए बृहच्छब्देन्दुशेखर का अपर नाम है उसका समिधान एवं नागेश जी भट्ट ने तथा टीकाकारों ने किया है । वास्तव में इसका आरम्भिक मूल नाम सद्देन्दुशेखर ही है । किन्तु बृहच्छब्देन्दुशेखर कहने से कोई आपत्तिजनक बात नहीं है ।

स० स० शै० एवं लघुसद्देन्दुशेखर में मूल अन्तर

महामहोपाध्याय नागेश भट्ट विरचित सद्देन्दु-

शैलर त्रय परम्पराधारण भट्टीफिदीनित प्रणीत गितान्तकांमुदी के ही व्याख्यान हैं। आपाततः यह कुछ वंचितपूर्ण या प्रतीत होता है कि एक ही ग्रन्थ गितान्त कांमुदी पर एक ही लेख के द्वारा दो व्याख्यान लिखे गये हैं। परन्तु इसका स्पष्टीकरण नागेश जी के दोनों शब्देन्दुशैलरों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है।

वृ० ३० शै० में नागेशभट्ट ने गितान्त कांमुदी का प्रसिद्ध व्याख्यान किया है तथा प्रत्येक विषय को विस्तृत विवेचन के साथ स्पष्ट किया है।

सत्कालीन विद्वानों के मतों का सुवित्तयुक्त शैली में निरूपण करते हुए उनके प्रामाण्यों का निराकरण बड़े ही सक्षम एवं मनोरम शैली में किया है।

दुसरे और लघुशब्देन्दुशैलर मात्र नाम से ही लघु है किन्तु स्वरूप एवं विषय गाम्भीर्य को दृष्टि में गितान्त कांमुदी का विशद व्याख्यान हो है। यह बात बल है कि बृहच्छब्देन्दु शैलर को अपेक्षा यह लघु है। वृ० ३० शै० में विस्तार से विषय का विवेचन किया गया है किन्तु लघु शब्देन्दुशैलर में विषय का विवेचन सामान्य शैली में किया है। काः इसके परिणामस्वरूप, लघुशब्देन्दुशैलर को स्थलों पर बृ० ३० शै० की अपेक्षा कठिन बन गया है। यही कारण है कि लघुशब्देन्दुशैलर पर जोकाई लिखी गयी है। किन्तु फिर भी कई स्थलों पर लघुशब्देन्दु शैलर के नागेशाभिप्रेत भावों को टोकाई भी स्पष्ट करी में जगमग रह जाती है। जबकि वही विषय वृ० ३० शै० के अध्ययनसे स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार के जोकाई उदाहरण डा० गोताराम शास्त्री ने वृ० ३० शै० की भूमिका में दिये हैं^१। यिनकी

१- द्रष्टव्य- वृ० ३० शै०, भूमिका, भाग १ डा० गोताराम शास्त्री, पृ० ३८, ३९, ४०, ४१, वाराणसी, १९६०।

यहाँ उद्धृत करके हम पिण्डपेक्षण नहीं करना चाहते हैं ।

का : स्पष्ट है कि बृ० श० शै० में जिन विषयों की व्यास शैली में व्याख्यात किया है उन्हीं को ल०श०शै० में सम्मानिक एवं सारगर्भित शब्दों में स्पष्ट किया है । इसी कारण से ल० श०शै० बृ०श० शै० की अपेक्षा गुढार्थ बन पड़ा है । किन्तु ऐसा सब कुछ होने पर भी दोनों ग्रन्थों में से किसी एक का भी महत्त्व किंकि मात्र भी कम नहीं होता है । अपितु दोनों का महत्त्व एक दूसरे के लिए और भी अधिक हो जाता है ।

उभय शब्देन्दुशेखरों का प्रणयन काल

यह एक महत्त्वपूर्ण समस्या है म० म० नागेश भट्ट ने उभय शब्देन्दुशेखर की रचना कब की तथा दोनों ग्रन्थों का पौर्वापर्य क्रम क्या है ? डा० पी०के० गोडे ने इस विषय में जानकारी देकर अन्य अनुगन्धितृजों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया है । किन्तु कुछ महत्त्वपूर्ण विप्रतिपत्तियाँ इस विषय में भी हैं जिनका उल्लेख हम यहाँ करेंगे ।

ल० श० शै० से बृ० श० शै० कावहुधा उल्लेख मिलने से बृ० श० शै० से पश्चाद्भावित्व तो सिद्ध ही है । तथा डा० पी० के० गोडे के विश्लेषण के अनुसार ल० श० शै० की रचना १७२१ ई० तक हो चुकी थी^१ । बृ० श०शै० के बारे में डा० गोडे ने लिखा है कि इसकी रचना १७१५ ई० तक हो चुकी थी^२ । डा० गोडे का मत निःसन्देह सत्य है कि बृ० श० शै० १७१५ ई० से पूर्व लिखा जा चुका था । किन्तु प्रश्न उठता है, क्या

१- द्रष्टव्य- श्रौतोलोचनी बाफ नागोजिभट्ट पृ० २१६

२-

..

पृ० २१६

१७१५ ई० से भी पूर्व बृ० श० शै० की उत्तरसीमा को नहीं माना जा सकता ? हमारे फा से बृ० श० शै० की रचना निश्चित रूप से १७०८ ई० तक हो चुकी थी । आः १७०८ ई० के बाद बृ० श० शै० की उत्तरसीमा को ले जाना ही नहीं चाहिए । इसका प्रमाण निम्न है -

“ उज्जैन के सिन्धिया प्राच्य विद्या संशोधन मन्दिर में उपलब्ध वं० सि० म० की पाण्डुलिपि का लिपिकाल १७०८ ई० है । जिसका उल्लेख डा० गोडे ने किया है तथा हमने भी यह पाण्डुलिपि उज्जैन ग्रन्थालय में जाकर देखी हुई है । ”

उक्त तथ्य से प्रमाणित हो जाता है कि वं० सि० म० की रचना १७०८ ई० से पूर्व सम्भवतः १७०० ई० तक हो चुकी होगी । यहाँ विचारणीय है कि वं० सि० म० में शब्देन्द्रशेखर का बहुधा उल्लेख मिलता है । स्तदनुसार बृ० श० शै० की रचना वं० सि० म० से पूर्व हो चुकी थी । किन्तु इसका विरोध इस फा के बाधक तत्त्व बृ० श० शै० में प्राप्त वं० सि० म० के निर्देशों से होता है ।

ऐसी स्थिति में यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि बृ० श० शै० की रचना पहले हुई या वं० सि० म० की । डा० के०डी० शान्त्री ने भी इस प्रश्न को उठाया है । किन्तु स्पष्ट रूप से उन्होंने भी दृढ़ निर्णय नहीं दिया है । इसकी चर्चा हम पहले भी द्वितीय अध्याय में

१- द्रष्टव्य- ब्रौनोलोजी आफ नागोजमट्ट पृ० २१५

२- द्रष्टव्य- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, द्वितीय अध्याय, पृ०

३- द्रष्टव्य- वही

पृ० ७

४- द्रष्टव्य - वं० सि० म०, भूमिका पृ० ६-७ डा० के०डी० शान्त्री, १९८५

कर चुके हैं^१। अतः यही कहा जा सकता है कि नागेशभट्ट ने बृ० श० शै० की रचना पहले आरम्भ की होगी तथा बृ० श० शै० का कुछ अंश लिखने के बाद उसके साथ ही बं० मि० म० की रचना आरम्भ कर दी होगी। अतः प्रसंगवश एक दूसरे के परस्पर निर्देश कर दिए होंगे।

अथवा एक यह भी सम्भावना की जा सकती है कि नागेशभट्ट ने बृ० श० शै० की रचना पहले कर ली थी। इसके अनन्तर बं० मि० म० की रचना की जिसमें उन्होंने शब्देन्दुशेखर को अनेकों बार स्मरण दिया है। परन्तु बृ० श० शै० के पुरखलौकन में मशौधन की स्वर्य आवश्यकता सम्भूत हुए मंथूणा में विशेष रूप से प्रतिपादित विषयक मूर्ति कर दिया होगा।

अभिप्राय यह है कि हमारे मन्तव्य के अनुसार नागेश जी ने बृ० श० शै० की रचना पहले की होगी। यही नहीं हमारे मता-नुसार बृ० श० शै० नागेश भट्ट की सम्भवतः सवसे प्रथम रचना होनी चाहिए।

उपर्युक्त विवरण के अनुसार बृ० श० शै० की रचना निश्चित रूप से १७०० ई० तक हो चुकी होगी।

बृ० श० शै० एवं वैयाकरण मि० म०

जिस प्रकार बृ० श० शै० सिद्धान्त कौमुदी की अनेक व्याख्याओं के होते हुए भी शीर्ष स्थान पर विराजमान है। उसी प्रकार व्याकरण-दर्शन पर कई अन्य ग्रन्थों के रहते हुए नागेश भट्ट की बं० मि० म० का स्थान सर्वापरि सुरक्षित है। नागेश भट्ट ने मंथूणा की रचना

तीन रूपों में की है :

- १- वं० पि० म०
- २- लघुमंजूषा
- ३- परमलघुमंजूषा

बाज यह तीनों ही ग्रन्थ मुद्रित रूप में उपलब्ध हैं। विनयवस्तु में भिन्नता रखते हुए भी वं० पि० म० एवं वृ० श० शै० का परम्परापेक्षात्व है ऐसा ही नहीं है। जफ़ि इन दोनों ग्रन्थ रत्नों के परस्पर संयोग में दोनों की परिपूर्णता है। वृ० श० शै० में जहाँ शब्दों के साधुत्व एवं असाधुत्व पर विचार करता है तथा प्रकृति प्रत्ययों के अर्थ एवं विधान की चर्चा की गई है। तो मंजूषा में शब्दार्थ के सम्बन्ध पर विचार किया गया है। तथा प्रकृति, प्रत्यय, विभक्ति वादि के अर्थों पर दार्शनिक शैली में विचार किया है। यही कारण है कि अनेक स्थलों पर प्रतिपाद्य साम्य होने पर परस्पर एक दूसरे का निर्देश मिलता है।

वृ० श० शै० एवं महाभाष्यप्रदीपौपौत

व्याकरणशास्त्र पर नागेश भट्ट का तीसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थरत्न महाभाष्य पर लिखी गयी कैयट कृत प्रदीप की उपोत नामक व्याख्या है। व्याकरणशास्त्र के जीवातुरूप महाभाष्य पर लेखनी चलाकर नागेश भट्ट ने महान् कार्य किया है। महाभाष्य में कृत भूषिम नागेश जी ने गुरुमुख में अज्ञात अधिक बार महाभाष्य का आशीषान्त व्याख्यान सुना था ऐसा भी कहा प्रचलित है।

कैयट कृत प्रदीप की प्रतीक मानकर नागेशभट्ट

१- पातञ्जलमहाभाष्ये कृत भूरिपश्चिमः ॥ इ० ल०श० शै० आरम्भिक श्लोक सं०१

ने इस व्याख्या का प्रणयन किया है। बृ० श० शै० के समान उषीत का भी स्वरूप अत्यन्त विस्तृत है। तथा प्रदीप की व्याख्या के व्याज में महाभाष्य के गूढ़ार्थों को विवेचनात्मक शैली में स्पष्ट किया है। कास्व जित प्रकार

सिद्धान्त कौमुदी की जोक व्याख्याओं के रहते हुए बृ० श० शै० का महत्त्व सबसे अधिक है। इसी प्रकार महाभाष्य की जोक टीकाओं के होते हुए भी उषीत का महत्त्व विशिष्ट है।

बृ० श० शै० का निर्माण सिद्धान्तकौमुदी क्रम में किया गया है अर्थात् बृ० श० शै० पाणिनीय व्याकरण के प्रक्रिया पत्र का सर्वश्रेष्ठ एवं अन्तिम प्रामाणिक ग्रन्थ है तो उषीत का निर्माण अष्टा-ध्यायी क्रम में वार्तिकों के साथ किया है। अतः उषीत पाणिनीय व्याकरण के सिद्धान्तिक पत्र का अमूर्तपूर्ण ग्रन्थ है।

उषीत का निर्माण बृ० श० शै० एवं वं० शि० म० के अन्तर हुआ है। यह हम द्वितीयाध्याय में बता चुके हैं^१।

बृ० श० शै० एवं परिभाषा-न्दुशेखर

जैसा कि सर्वविदित है परिभाषा पाठ पाणिनीय व्याकरण का अभिन्न अंग है। अतः म० म० नागेश भट्ट प्रणीत परिभाषा-न्दुशेखर इस विषय में सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। वैसे तो बृ० श० शै० में भी परिभाषाओं की व्याख्या प्राग्वश की हुई है। किन्तु फिर भी परिभाषाओं की व्याख्या एवं उनके विषय में तत्कालीन विप्रतिपत्तियाँ तथा असंगतियों के निराकरण ~~कठकहसि~~ की आवश्यकता अनुभूत करते हुए

परिभाषाओं पर स्वतन्त्र रूप से परिभाषीन्दुशेखर की रचना की थी ।

परिभाषीन्दुशेखर की शैली की प्रादुर्भावात् स्वभाव गाम्भीर्य को देखकर महज ही इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि परिभाषीन्दुशेखर नागेश भट्ट ने सम्भवतः अभी से बाद में लिखा होगा । डा० गीताराम शास्त्री के शब्दों में परिभाषीन्दुशेखर नागेश भट्ट की व्याकरण ग्रन्थों में वन्तिम रचना है ।

बृ० श० शै० स्व लघुशब्दरत्न

भट्टोजिदीप्ति की सिद्धान्तकौमुदी को खोपल व्याख्या प्रादुर्भावरूप पर नागेश भट्ट के गुरु म० म० हरिदीप्ति जी ने बृहच्छब्दरत्न नामक विस्तृत व्याख्या लिखी थी । फिर पर जगन्नाथ इत्यादि विद्वानों ने आलोचन भी उठाये हैं । इनका सङ्केत करते हुए तथा अपने गुरुजी के मूल की पुष्ट करते हुए नागेश भट्ट ने लघुशब्दरत्न नामक व्याख्या लिखी जो कि अपने गुरु जी के नाम से प्रचलित करा दी है ।

लघुशब्दरत्न के नागेशभट्ट प्रणीतत्व के प्रमाण ल० श० शै० तथा बृ०श०शै० की शैली एवं विषयवस्तु के साम्यत्व से मिलते हैं । जتنا हो नहीं करे स्थलों पर वही ल० श० शै० में प्रयुक्त वाक्यांश लघु शब्दरत्न में मिलते हैं । डा० गीताराम शास्त्री ने कुछ स्थलों पर मात्र प्रतीक भेद माना है^१ । ल० श० शै० सिद्धान्तकौमुदी की प्रतीक मानकर लिखा गया है । जबकि व०श०र० प्रादुर्भावरूप के प्रतीकों पर रक्ता है । इसके अतिरिक्त

१- द्रष्टव्य- बृ० श० शै० भाग १ , भूमिका , पृ० ४४ , वाराणसी , १९६०

२- .. - बृहच्छब्दरत्नशेखर, भाग १ डा० गीताराम शास्त्री, भूमिका
पृ० वाराणसी, १९६०

नागेशभट्ट के प्रधान शिष्य वैयास पायगुण्डे के निर्देशों के अनुसार त०श०१० का नागेश कृतत्व ही प्रमाणित होता है।

त० श० २० की रचना नागेश जी ने उभय शैली के अन्तर ही की है। यह त० श० १० में उभयशैली के बहुधा निर्देशों से ही सिद्ध हो जाता है।

उपरिनिर्दिष्ट विवरण से हम देखते हैं कि नागेशभट्ट विरचित वृ० श० शै० पाणिनीय व्याकरण की प्रश्रिया रूप शाला का वाकर ग्रन्थ के समान है। इस ग्रन्थ का व्यापक महत्त्व प्रायः सभी व्याकरण ग्रन्थों के साथ अनुस्यूत है। प्रत्यय या अप्रत्यय रूप से सभी ग्रन्थों में प्रायः जुड़ा हुआ है।

श०शै० की संरचना

जैसा कि पहले कहा चुके हैं- शब्देन्दुशेखर सिद्धान्त कौमुदी की व्याख्या है। अतः सिद्धान्तकौमुदी के क्रम में सिद्धान्त कौमुदी को प्रतीक मानकर लिखा गया यह ग्रन्थ स्वल्प की दृष्टि से शि० कौ० में बहुत अधिक बढ़ा बन गया है। सिद्धान्तकौमुदी के समान ही वृ० श० शै० तथा त० श० शै० दोनों को ही पूर्वाह्न एवं उत्तराह्न दो भागों में विभक्त किया है। वृ० श० शै० ग्रन्थ के सप्तेति भागों में मुद्रित उपलब्ध है। ग्रन्थ का पूर्वाह्न प्रथम एवं द्वितीय भागों में पूर्ण होता है। सम्पूर्ण ग्रन्थ को ८२ प्रकरणों में विभक्त किया हुआ है। ग्रन्थ का पूर्वाह्न भाग जो ४८ प्रकरणों में विभा-

१- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, द्वितीय अध्याय पृ० ६५ टिप्पणी श० १(क) एवं (स)

२- वही ,

पृ० ६५ टिप्पणी श० २ क, स, एवं ग

जित है उत्तरार्द्ध से क्लेश में दो गुना अधिक है । अव्ययी भाव समास प्रकरण तक विशेष व्याख्यान होने के कारण प्रथम भाग का क्लेश बहुत विस्तृत हो गया है । अतः द्वितीय एवं तृतीय भागों की व्याख्यान शैली सामान्य होने के कारण उक्त दोनों भागों में स्वरूप लाघव है । वृ० श०शे० का उत्तरार्द्ध भाग ३४ प्रकरणों में विभक्त होकर ग्रन्थ के तृतीय भाग मात्र में ही पूर्ण होता है ।

ल० श० शे० की भी प्रकरण योजना प्रायः वृ० श० शे० के समान ही है । ल० श० शे० का भी स्वरूप अव्ययी भाव समास प्रकरण तक अत्यधिक विस्तृत विवेचनात्मक शैली के कारण बढ़ गया है । शैली में कहीं कहीं वैषम्य रहता (ल० श० शे० , वृ० श० शे०) है । नाम के अनुसार ऐसा नहीं है कि ल० श० शे० में सभी विषयों की समास शैली में व्याख्यात किया है । अपितु अनेक विषयों की वृ० श० शे० की अपेक्षा अत्यधिक विस्तार से विवेचन किया है ।

उभय शब्देन्दुशेखरे टीका ग्रन्थ होने से सिद्धान्त कामुदी के प्रतीकों को लेकर तत्ताद् विषयों की व्याख्या विस्तृत विवरण देते हुए की है । प्रायः व्याकरण के सम्पूर्ण प्रणियों को स्पष्ट करते हुए नागेश जी ने विषय का उपन्यास किया है । अनेक स्थलों पर महाभाष्य के वचनों का सक्ति करते हुए विषय की गतिता की प्रतिपादित किया है । अनेक प्राचीन एवं तत्कालीन व्याकरणों एवं उनके मतों का समरण , सङ्गन एवं मण्डन दोनों ही रूपों में किया है । अतः निश्चित ही नागेश जी के अन्य साधारण बुद्धि वैभव के प्रतिभु यह दोनों ही ग्रन्थ होने में अन्य साधारण एवं अप्रतिम है ।

जोनों मनीहारी तर्कों एवं युक्तिवादों के

नागेश जी ने अपने परम गुरु भट्टोजि दीक्षित के समर्थन में यह ग्रन्थ लिखा था। जबकि भट्टोजि दीक्षित के ग्रन्थों पर जलन्माष वादि विद्वानों ने बानीप उठाये हुए थे। यद्यपि नागेश जी ने भी कहीं कहीं भट्टोजिदीक्षित के विरोध दिखाया है। अतः ऐसे स्थलों पर भट्टोजिदीक्षित की कटु मीमांसा न करते हुए "मूलं तु वृत्त्यतुरोधेन" , "रक्षित ग्रन्थानुसारेण" , "मूलं तु मनोरमा चिन्त्ये" इत्यादि पंक्तियों के ही स्वमत-वैपरीत्य प्रकट किया है। कुछ अन्य स्थलों पर महाभाष्य के वचनों के साथ भी विरोध प्रकटित होता है।

अन्य प्राचीन वैयाकरणों के मतों का विरोध कई स्थलों पर मिलता है। ऐसे स्थलों पर "अन्ये" "वपरे तु" , "केचित्तु" "प्राज्यः" इत्यादि शब्दों का प्रयोग नागेश जी ने किया है। महाभाष्य के व्याख्याकार कैयट के साथ प्रायः फे-फै 'कैयटस्तु' कहकर विरोध प्रकटित किया है। स्वमत प्रतिपादन के लिए नागेश जी ने "वस्तुतस्तु" "वपरे तु" इत्यादि पदों के प्रयोग पूर्वक विनयीपन्थाय किया है।

१- इत्युत्तरभाष्यमाव्यक्तयोपलक्षणताया आवश्यकत्वान्नादर्शयिष्यम् ।

मूलं तु वृत्त्यतुरोधेनेत्याहुः । "

- वृ० शब्दौ०, प्र० भा० पृ० ८५

- "व्यपेक्षायां नित्यार्थश्चेति मूलं पुनः व्ययम्परे ।" इतिरूपस्था प्रत्ययस्य विवर्ण इति समानाधिकरण्ये त्वित्वादि मनोरमा च चिन्त्ये । "

- वृ० शब्दौ० प्र० भा० पृ० २६६

२- इति भाष्योक्तारण्यतेरित्याहुः । खौड्० , रेवाञ् , झौगुणवृद्धी , इतिरूपस्थ भाष्यन्तु पूर्वपक्षस्थथा प्रादिवाद इति ध्येयम् ।।

- वही, पृ० २००

अपि व्याकरण विषयक ग्रन्थ होते हुए भी शैली की प्रादुर्भा अवश्य है। किन्तु फिर भी नागेश भट्ट की माता-ग्राहिणी एवं नाति कठिन शैली के ग्रन्थ की लोकप्रियता और भी बढ़ जाती है। यही कारण है कि सि० का० की अनेक टीकाओं के होते हुए यह ग्रन्थ सर्वातिशायी है।

शब्देन्दुशेखर की टीकारं

नैमर्गिक अर्थ गाँव के होने पर भी श० शै० की टीकाओं के इस ग्रन्थ का गाँव और बढ़ जाता है। जैसाकि हम पहले भी कह चुके हैं कि बृ० श० शै० की किसी टीका के विषय में अभी तक हमें कोई सूचना नहीं मिली है^१। और न ही बृ० श० शै० के सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ की किसी टीका के विषय में कुछ कहा है। किन्तु ल० श० शै० पर अनेक टीकारं लिखी जा चुकी हैं तथा आज भी लिखी जा रही हैं। ल० श० शै० की अनेक प्राचीन टीकारं हैं जो मुद्रित रूप में कम उपलब्ध हैं और पाण्डुलिपियों के रूप में विभिन्न ग्रन्थाख्यौ में संगृहीत हैं। उनकी मात्रा अधिक है।

लघुशब्देन्दुशेखर की प्रमुखतम टीकारं निम्न-लिखित हैं -

- १- चिदम्बिमाला - वेंपनाथ पायगुण्टे
- २- चन्द्रकला - मेखमि
- ३- तिलक - सदाशिवभट्ट
- ४- ज्योत्स्ना - उदयशंकर पाठक
- ५- विष्णुमण्डविबुद्धि - राधेन्द्राचार्य

१- देखिए- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पृ० २२

- ६- विवरण - भास्करशास्त्री जम्भकर
 ७- वखणिनी - गुरुप्रसाद शास्त्री
 ८- गूढार्थप्रकाश - वासुदेव शास्त्री जम्भकर
 ९- अभिनवचन्द्रिका - श्री विश्वनाथ वण्डि भट्ट
 १०- विवृति संग्रह - सदाशिव भट्ट
 ११- बृहज्जटाश्रुत - श्री स्नेहिराम शास्त्री
 १२- भूति - ..
 १३- त्रिपुराण्वरी - ..
 १४- विजया - श्री शिवनारायणशास्त्री

इन टीकाओं के अतिरिक्त भी ल० श० शै० की अन्य जोक टीकार हैं जो इतनी प्रसिद्ध नहीं हैं। उपरिनिर्दिष्ट टीकाओं में दो टीकाओं, तिलक और विवृति संग्रह की सदाशिवभट्ट प्रणीत दर्शाया गया है। वस्तुतः इस विषय में हमें दो भिन्न स्थानों पर दोनों टीकाओं का निर्देश मिलता है। श्री सदाशिव भट्ट प्रणीत "तिलक" टीका का निर्देश प्रौ० के० वी० जम्भकर ने किया है^१। दूसरी टीका श्री सदाशिवभट्ट विरचित "विवृति संग्रह" नाम से प्रकाशित है। यह टीका पं० नन्दकिशोर शास्त्री द्वारा सम्पादित ल० श० शै० (जट्टीकीपत्र) में विवृति संग्रह के नाम से प्रकाशित है^२। टीका के आरम्भ में स्वयं टीकाकार ने "विवृति-संग्रह" कहकर ही इसका परिचय दिया है^३। यह टीका स्त्रीप्रत्ययप्रकरणान्त

१- Date and Authorship of the Sabdaratna and the Brahatsabdaratna by K.V. Abhyankar, Printed in AFOI, Vol. XXXII pp 258-260, Poona.

२- ल० श० शै० (अव्ययीभावान्तौ भागः) सम्पा० श्रीनन्दकिशोर शास्त्री, बनारस, १९३५

३- शेषा तदीशं च विनत्य लम्बीमीशस्य प्रीत्या ह्यवलौडपि यौजमवत् ।

लिखामिग्रन्थं निजबुद्धिपुष्टये, शिष्यार्थं विवृतिग्नहन्तिवदम् ॥

- वही, पृ० २ (सदाशिवभट्टीयम्)

तक ही मिलती है। क्तः स्त्री प्रत्यय के वन्त में सम्पादक महोदय ने टिप्पणी देते हुए इस टीका की 'तिलक' नाम से निर्दिष्ट किया है। वस्तुतः इन दोनों नामों से इनके परम्पर पार्थक्य एवं ऐक्य के विषय में मन्देह हो जाता है। किन्तु वास्तविकता तो यही जान पड़ती है कि उक्त दोनों नाम एक दूसरे के अपर्याय ही हैं।

सि० कां० की विभिन्न व्याख्याओं में शब्देन्दुशेखर का स्थान

जैसा कि पूर्व विदित है सिद्धान्त कामुदी प्रक्रिया व्याकरण पर अक्षुप्तपूर्व एवं अप्रतिम ग्रन्थ है। इसी कारण लोक विद्वानों ने इसकी टीकाएं लिखी हैं। सि० कां० की सभी टीकाएं मुद्रित तो नहीं हैं। क्तः कुछ मुद्रित हैं और कुछ पाण्डुलिपियों के रूप में विभिन्न ग्रन्थागारों में संकलित हैं। सि० कां० की मुद्रित एवं अमुद्रित निम्नलिखित टीकाएं प्रसिद्ध हैं।

१- प्राद्वन्मोरमा	भट्टोजिदीपित
२- तत्त्वबोधिनी	ज्ञानेन्द्रसरस्वती
३- सुखबोधिनी	नीलकण्ठबाणपेयी
४- तत्त्वबोधिनी	रामानन्द
५- बृहच्छब्देन्दुशेखर	नागेशभट्ट
६- लघुशब्देन्दुशेखर	..
७- रत्नाकर	रामकृष्ण
८- पूर्णिमा	रंगनाथ यज्वा
९- बालमनोरमा	वाणदेव बाणपेयी
१०- रत्नार्णव	कृष्ण मिश्र
११- सुमनोरमा	तिरुमल द्वादशाहम्याजी

१- क्तः परं मदास्त्रिभट्टीयं तिलकं नोपलभ्यते ।

- वही , स्त्रीप्रत्ययप्रकरणान्त पृ० ५६७

- १२- प्रकाश तोष्पलदीपित
 १३- विलास लम्पी नृसिंह
 १४- रत्नाकर शिवरामचन्द्र सारस्वती
 १५- फलिकाप्रकाश इन्द्रदत्तापाव्याय
 १६- बालबोध सारस्वत-सूद मिश्र
 १७- मानसार्जनो वल्म
 १८- रामचन्द्र ने स्वर प्रक्रिया पर कौह व्याख्या लिखी है ।
 कुछ टोकारं अज्ञातकर्तृक भी उपलब्ध हैं ।
 १९- लघुमनोरमा
 २०- शब्दसागर
 २१- शब्दरत्नावलि
 २२- सुधाजन

उपर्युक्त टोकार्यों में शब्देन्दुशेखर ग्रन्थों का महत्त्व विशेष है । वैसे तो उक्त व्याख्याओं में भी अनेक व्याख्याओं की और भी व्याख्यान लिखी गयी हैं । उन सभी का उल्लेख करने में आवश्यक विस्तार ही होगा ।

वास्तव यहाँ व्याख्या है कि जितनी प्रसिद्धि एवं सम्मान विद्वानों ने शब्देन्दुशेखर को दिया है उतना अन्य किसी व्याख्या ग्रन्थ को नहीं मिल पाया है । शब्देन्दुशेखर पर विभिन्न विद्वानों ने टोकारं लिखकर इस ग्रन्थ के महत्त्व को और भी बढ़ा दिया है । शब्देन्दुशेखर की

१- उक्त व्याख्याओं के विशेष विवरण के लिए देखिए-

युधिष्ठिरमीमांसक - ग० व्या० शा० का इति० भाग १, पृ० ४८६-४९४

एक और विशेषता यह है कि इस ग्रन्थ की मान्यताओं, तर्कों एवं युक्ति-
वादों का बाज तक किसी भी विद्वान् ने सफ़्फ़न नहीं किया है। अतः शब्दे-
न्दुशेखर को अन्तिम रूप में प्रमाण माना गया है।

विद्वत्समाज में असाधारण सम्मान प्राप्त
एवं पिछान्त काँमुदों के पिछानुओं के लिए महान् उपयोगी इस ग्रन्थ की
रचना करते निश्चित ही नागेश जी ने व्याकरणध्वेताओं को बरदान दिया
है। अतः इस ग्रन्थ की प्रश्रिया व्याकरण के लिए उपादेयता को देखकर ही
इसके मिलने वाले योगदान का मूल्यांकन मूल्य हो सकता है।

पंचम अध्याय

प्रकृत अध्याय में हम नागेश भट्ट रचित 'परि-
भाषीन्दुशेखर' के मन्दर्म में कुछ विचार करेंगे। हमें पूर्व कि हम परिभा-
षीन्दुशेखर के मन्दर्म में कुछ कहें, व्याकरणशास्त्र में परिभाषा की स्थिति
पर संक्षेप में चर्चा करना उचित समझते हैं। वस्तुतः परिभाषापाठ व्या-
करणशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जिस प्रकार शब्दानुशासनपाठ, धातु-
पाठ, गणपाठ इत्यादि व्याकरणशास्त्र के प्रसृत अंग हैं। परिभाषापाठ
के मन्दर्म में कुछ भी विचार करने के लिए पहले परिभाषा का इतिहास जानना
भी परमावश्यक है।

व्याकरणशास्त्र में परिभाषा शब्द का प्रयोग
अत्यन्त प्राचीनकाल से होता रहा है। परिभाषा शब्द की परिभाषा या
लक्षण वैयाकरण सम्प्रदाय में एक प्रकार प्रचलित है - " वनियमप्रणै
नियमकारिणी परिभाषा " हमें मिलता हुआ प्रमाण कारिका की ये
पंक्ति है। " परिभाषीयं स्थानिनियमार्था । वनियमप्रणै नियमीविधीयते । " ^१
वस्तुतः व्याकरणशास्त्रीय परिभाषाओं का इतिहास स्फुट रूप में तो उपलब्ध
नहीं होता। किन्तु यथाकथञ्चित् मन्दर्म ग्रन्थों के अलीकृत से परिभाषा के
सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में जानकारी उपलब्ध की जा सकती है। वस्तुतः
परिभाषाओं का प्रणीता कोई एक बुनि या वैयाकरणाचार्य नहीं हैं। ^२ अपितु
अनेकों वैयाकरणों ने पृथक् पृथक् परिभाषाओं की रचना की होगी। जिन्हें
कालान्तर में विविध व्याख्याताओं ने संशुद्धित किया तथा उनकी व्याख्यान

१- द्रष्टव्य- कारिका , १।१।३ , ह्येरायादीय संस्करण पृ० ७६

२- द्रष्टव्य- वही, परिभाषा हि नाम न गान्गात्पाणिनीयस्य-अनि ।

किं तर्हि नानाचार्याणाम् ।

- गीरदेव परिभाषावृत्ति ।

भी लिखीं। सम्प्रति प्रश्न उठता है कि परिभाषाओं का प्रणयन किस काल में हुआ होगा तो इसका समीचीन उत्तर तो यही है कि जैक कृतृत्व होने के परिभाषाओं के प्रणयन का कोई एक काल निर्धारित करना तो अशक्य हो प्रतीत होता है। तथापि पाणिनि के पूर्व प्राचीन वैयाकरणों ने भी परिभाषारं लिखी थीं। पाणिनि के पूर्व भी परिभाषारं प्रचलित थीं। पाणिनि तथा पाणिनि के उत्तरवर्ती काल में भी परिभाषाओं का प्रणयन कार्य चलता रहा कदाचित् इसी कारण विविध परिभाषा पाठ संग्रहों में परिभाषाओं की संख्या तथा अनुक्रम में भेद मिलता है। हमारे विचार में परिभाषाओं का प्रणयन प्राचीन वैयाकरणों के युग से नागेश के समय तक हुआ होगा। जैके जैके सूत्र तथा उनकी व्याख्यान हुए। वैसे ही विप्रतिपत्तियाँ उपरिष्कृत होने पर परिभाषारं बनती रही होंगी। परिभाषापाठ के अन्तिम संग्रहकर्ता स्व व्याख्याता नागेश भट्ट ही हैं। जिन्होंने परिभाषानुशेखर नामक विशद व्याख्या ग्रन्थ का निर्माण करके न केवल परिभाषाओं की परिष्कृत किया है अपितु सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्र पर महान् उपकार किया है। यहाँ हम एपीप में नागेश भट्ट के पूर्व परिभाषा पाठ संग्रहों के विषय में चर्चा प्रस्तुत कर रहे हैं।

व्याधिप्रणीत परिभाषारं

प्राचीन वैयाकरणों द्वारा निम्न परिभाषाओं के लेकर पाणिनीयतन्त्राश्रित परिभाषाओं के जो संग्रह हुए हैं उनमें सर्वप्रथम संस्कृतार्थ के रूप में वाचस्पत्य व्याधि को मानते हैं। व्याधि प्रणीत परिभा-

-
- १- परिभाषानुशेखर के आरम्भ में स्वयं नागेश भट्ट लिखते हैं - " प्राचीन वैयाकरणतन्त्रेणावनिकान्यत्र पाणिनीयतन्त्रे आपकन्यायविहितानि--- । इत्यादि वाक्य से ही प्राचीन वैयाकरणों का परिभाषा प्रणेतृत्व प्रमाणित होता है।

णाओं के ग्रंथ की सूचना विविध हस्तलेखों से प्राप्त होती हैं। व्याकरणशास्त्र-
तिहासकार युधिष्ठिरमीमांसक जी ने इस विषय में बड़ी महत्त्वपूर्ण कार्य किया
है। मीमांसक जी ने कुछ पाण्डुलिपियों के नाम दिए हैं जो व्याडि विरक्ति
परिभाषा पाठ को हैं। मीमांसक जी ने निम्न परिभाषाओं के आधार पर
उन्हें व्याडिकृत सिद्ध किया है -

विश्वेश्वरानन्द संस्थान होशियारपुर स्थित ग्रन्थालय
में प्राप्त परिभाषापाठ की दो पाण्डुलिपियों के ये अन्तिम वचन उद्धृत किए
हैं -

“ कैचित् व्याख्यानतः विशेषतः प्रतिपत्तिरित्यादयः

एषां: परिभाषा: व्याडिमुनिना विरक्ता इत्याहुः । ”

उक्त पाण्डुलिपियों की ग्रंथ संख्या उन्होंने ये
निर्दिष्ट की है :

सं० ३२७७- ३२७२

इण्डिया आफिस पुस्तकालय लन्दन से प्राप्त
किमी भास्कर भट्ट के बन्नेवासी द्वारा प्रणीत परिभाषावृत्ति के हस्तलेख
में भी व्याडि का परिभाषा कर्तृत्वं सूचित होता है। वहाँ उन्होंने यह
वाक्य उद्धृत किया है -

“ कैचित् व्याख्यानत इति परिभाषा व्याडिमुनि
विरक्ता इत्याहुः । ” २

१- द्रष्टव्य- युधि० मीमा०

संस्कृत व्या० शा० का इति० भाग तृतीय, क्रमसं० २०१६

पृष्ठ २४५

२- वही

इनके अतिरिक्त भीमासक्तजी ने त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित नीलकण्ठ दीपावली की परिभाषावृत्ति से यह उद्धरण दिया है - 'सर्वं मर्तु-हरिषचनम् ।' केचित्तु व्याख्यानत इत्यादि परिभाषा व्याडि विरक्तिा इत्याहुः ।

जम्बू के रघुनाथ मन्दिर में हस्तलिख संग्रह में किसी व्याडीय परिभाषावृत्ति नामक ग्रन्थ की सूचना भीमासक्त जी ने दी है ।

इनके अतिरिक्त के०वी० अम्बेकर जी द्वारा प्रकाशित 'परिभाषासंग्रह' नामक ग्रन्थ में भी व्याडिकृत दो परिभाषा पाठों की सूचना मिलती है । जिनके नाम हैं -

- १- परिभाषासूचनम्
- २- परिभाषा पाठ

उक्त साध्यों से प्रमाणित है कि व्याडि ने परिभाषापाठ का संग्रह किया था ।

पाणिनि प्रणीत परिभाषाएँ

पाणिनिकृत परिभाषापाठ भी है इस सन्दर्भ में विद्वानों में मतभेद मिलती है । पाणिनि ने भी किसी परिभाषापाठ का प्रवचन किया था । इस प्रकार की सूचनाएँ तो बहुत उपलब्ध हैं । इस विषय

१- सुधि० मी० सं० व्या० शा० का वृत्ति० पृ० २४५ भाग २

२- वही , पृ० २४५

३- के० वी० अम्बेकर, परिभाषा संग्रह

में भीमार्क जी ने अठार ग्रन्थालय की एक पाण्डुलिपि को प्रमाणित किया है। वहाँ उन्होंने उस पाण्डुलिपि का यह वचन भी उद्धृत किया है।
 “परिभाषासूत्राणि पाणिनि कृतानि।”^१

उक्त पाणिनिप्रोक्त परिभाषा पाठ भी था। यह सिद्धान्त प्रमाणित होता है। किन्तु हमारे विचार से तो पाणिनि प्रोक्त परिभाषाओं का संग्रह ही व्याडि ने किया होगा। क्योंकि एक स्थल पर यह वाक्य मिलता है- “इति व्याडिविरचिताः पाणिनीय परिभाषाः समाप्ताः”^२। इस वचन से स्पष्ट होता है कि पाणिनि ने जिन परिभाषाओं का प्रवचन किया था उन्हीं का संकलन व्याडि ने किया।

परिभाषापाठ के व्याख्यात हरदत्त

उक्त परिभाषापाठों की व्याख्यान कालक्रम से हुई है। इस क्रम का विवरण संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं। परिभाषाओं की व्याख्याओं की परम्परा में हरदत्त का नाम कालक्रमानुसार सर्वप्रथम लिया जा सकता है। काशिकावृत्ति के व्याख्याता हरदत्त ने परिभाषा पाठ की भी व्याख्या लिखी थी। जिसका नाम “परिभाषा प्रकरण” था। इस मूल को प्रमाणित करने के लिए भीमार्क जी ने काशिकावृत्ति की हरदत्त रचित फलमवरी व्याख्या में से यह वचन उद्धृत किया है। “न सम्प्रसारणी सम्प्रसारणम्”^३ इस सूत्र की वृत्ति पर व्याख्या करते हुए हरदत्त ने लिखा

-
- | | | |
|----|---------------------------------------|-------------|
| १- | युधि० भी० सं० व्या० शा० का इति० भाग २ | पृ० २४६ |
| २- | द्रष्टव्य- | वही पृ० २४६ |
| ३- | वही | पृ० २४६-२५० |

है - " वन्त्यविशेषेन्यदेशस्य " इत्यनया परिभाषया तर्हि
वन्त्यदेशस्यैव भविष्यति नेतरस्य ? नैषास्ति परिभाषा प्रयोजनाभावात् ।
एतच्चास्माभिः " परिभाषाप्रकरणाख्ये ग्रन्थे उपपादितम् । "

पुरुषोत्तमदेव

परिभाषापाठ के व्याख्यातार्थों में पुरुषोत्तमदेव का नाम द्वितीय संख्या पर लिया जा सकता है । पुरुषोत्तमदेव ने परिभाषापाठ पर एक वृत्ति विस्तृत वृत्ति लिखी है जिसका नाम लघुवृत्ति कहा जाता है । इसके अतिरिक्त पं० काशीनाथ वागुदेव अम्बरजी ने स्वसम्पादित " परिभाषावृत्ति " की भूमिका में पुरुषोत्तमदेव ने परिभाषापाठ पर दो व्याख्या ग्रन्थ लिखे थे, इस प्रकार की सूचना दी है । लेकिन वहाँ नामों निर्देश तो केवल एक का ही किया जा रहा है - " लघुपरिभाषावृत्तिः " । अन्यत्र एक स्थल पर पुरुषोत्तमदेव प्रणीत " भाषावृत्ति " के स्वामी भारिकादास शास्त्री द्वारा सम्पादित संस्करण की भूमिका में पुरुषोत्तमदेव द्वारा प्रणीत ग्रन्थों की सूची की प्रकाशित किया है । तदनुसार उनके लघुवृत्ति नाम वृत्तिग्रन्थ की महामाध्य

१- काशिकावृत्ति- व्यासफल्गुनी गहिता, कर्तृ माग , वाराणसी, १९६७

पृ० ४६२ , ६११३७

२- द्रष्टव्य- युधि० मी०- सं० व्या० शा० का इति० माग २ पृ० २५०

३-Out of the several grammar works written by Purusottama deva, there are two on Vyakaranaparibhasas. One of them called the Laghuparibhasavrtti.

- Introduction of Paribhasenduskhara, Ed. by K.V. Abhyankara , p-5 Poona 1962.

४- द्रष्टव्य- भाषावृत्ति- भूमिका सम्पादक- स्वामी भारिकादास शास्त्री,

पृ० ६, वाराणसी, १९७१

प्राणपणा ' पर आधारित होने का संकेत किया है । तथा परिभाषा-
वृत्ति के अतिरिक्त ' दुर्घटवृत्ति ' तथा ' शाफक समुच्चय ' नामक ग्रन्थों
का संकेत मिलता है । इनमें से शाफक समुच्चय के सम्बन्ध में मीमांसक जी ने
संकेत किया है कि यह ऋष्टाव्यायी के सूत्रानुक्रमसंगत नियमों का व्याख्यान
है । अतः यही कदाचित् परिभाषापाठ पर पुरुषोत्तमदेव का दूसरा
व्याख्यान ही सकता है । पुरुषोत्तमदेव की परिभाषावृत्ति का वंशि-
ष्टय तत्कालीन वृद्धसम्पत्तत्त्व होने से ही स्पष्ट होता है। स्वयं पुरुषो-
त्तमदेव ने शाफक समुच्चय के आरम्भ में इस वृत्ति को वृद्धसम्पत्ता कहा है ।
शाफक समुच्चय का यह वचन मीमांसक जी ने संस्कृत व्याकरणशास्त्र के
इतिहास के द्वितीय भाग के पृ० २५० की टिप्पणी में इस प्रकार दिया
है - " यश्चै परिभाषाणां वृत्तिं वृद्धसम्पत्ताम् । "

पुरुषोत्तमदेव का समय वैष्णवीय द्वादश शताब्दी
को माना है। पुरुषोत्तम देव की परिभाषावृत्ति पर विविध टीकार
लिखी गयी है । जिनका विवरण पं० मीमांसक जी ने दिया हुआ है ।

सीरदेव

पुरुषोत्तमदेव के अन्तर परिभाषापाठ के
व्याख्याताओं में सीरदेव का नाम प्रामुख्येन लिया जा सकता है । सीर-
देव ने परिभाषावृत्ति नामक व्याख्या लिखी है जिसे बृहद्परिभाषावृत्ति

१- द्रष्टव्य- सं० व्या० शा० का इति० भाग २ पृ० २५१

२- द्रष्टव्य- वही पृ० २५१

भी कही है। शीरदेव ने जहाँ १३६ परिभाषाओं का ग्रंथ तथा उनकी व्याख्या लिखी है। उस ग्रन्थ का प्रकाशन कहीं भी हो चुका है। इसका मूल्य भी मौलिक भी न किया हो है। शीरदेव के ग्रन्थ में उनके जीवन वृत्त तथा देशकाल के विषय में एकदम रूप से कुछ नहीं मिला है। १०५० के० बी० बन्धु ने उन्हें पारस्य ही माना है तथा पाणिनीय परम्परा की पारस्य शाखा के वाचार्थ के रूप में उन्हें प्रमाणित किया है^१।

शीरदेव के अन्तर भी परिभाषापाठ की तथा परिभाषापाठ की वृत्तियों की व्याख्या हुई है। जिसका विस्तृत विवरण भी मौलिक भी न किया हो है। शीरदेव का व्याकरण शास्त्र का इतिहास नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत अन्तर्गत में किया है। उस यहाँ उन भी का विवेक को न समझते हुए उसी वर्ग नहीं कर रहे हैं।

वस्तुतः पुरुषोत्तम देव तथा शीरदेव के अन्तर परिभाषा पाठ की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाणित व्याख्या म०० नागोजी भट्ट ने की है। जिसका परिभाषाशुद्धि नामक ग्रन्थ है। जो समग्र परिभाषा जगत् को शिरोमूर्ति के रूप में विराजमान है। कोई भी संस्कृत-तुराणी परिभाषाशुद्धि के नाम से जाना नहीं है। यह ग्रन्थ नागभट्ट की अतिशय, प्रदि प्रतिभा की प्रदर्शित करता है। नागेश जी ने परिभाषाशुद्धि का प्रणयन उसी बाद में किया था। काः स्पष्ट है कि जो नागेश की प्रतिभा व्याकरण शास्त्रीय ग्रन्थ मूल्या, उपाध तथा शब्दशुद्धि के ग्रन्थों

१- See- Introduction of Paribhasendu sekharā, Ed. by K.V. Abhyankara.

" Nothing is known definitely about the place of residence or personal history of Siradeva."

" That he was a resident of eastern India and belonged the eastern branch of the school of Panini."

२- इन्द्र- सुवि० मी० म० व्या० शा० का इति० भाग २ पृ० २५१-२५२

के निर्माण में और भी ध्वस्त हो चुकी थी। और किसी गूढ़ सम्प्रदाय को वे स्वयं कोई दिशा प्रदान करने में सक्षम थे। नागेश भट्ट के 'परिभाषानुशेखर' के अन्तर्परिभाषा पाठ पर अन्य कोई ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से नहीं लिखा गया है। अतः नागेश का परिभाषानुशेखर अन्तिम प्रमाण रूप में माना जाता है। अध्ययन अध्यापन में भी नागोपि कृत परिभाषानुशेखर का प्रचलन ही मुख्य रूप से रहा है।

व्याकरण परिभाषाओं के सम्प्रदाय

प्रधानतः व्याकरण परिभाषाओं के तीन सम्प्रदाय हैं। जिनमें सबसे प्रथम एवं प्राचीनतम सम्प्रदाय व्याडि से प्रारंभ होता है। सबसे पहले व्याडि ने पाणिनिप्रोक्त परिभाषाओं का संग्रह किया। तथा उन पर वृत्ति भी लिखी। जिसका संग्रह महामहोपाध्याय काशीनाथ वासुदेव वर्ष्मकर ने 'परिभाषासंग्रह' नाम से प्रकाशित ग्रन्थ में क्रमशः दिया है।

परिभाषा के क्षेत्र में चान्द्र एवं शाकटायन परम्परा के व्याकरणों ने व्याडि का ही अनुकरण किया है।

परिभाषा के द्वितीय सम्प्रदाय का आरम्भ कातन्त्र व्याकरण परम्परा से होता है। इस परम्परा के आचार्यों ने अधिक मात्रा में तौ पाणिनि के परिभाषा सूत्रों को ही स्वीकार किया

हैं। इस सम्प्रदाय के जाचार्यों ने परिभाषा की दो भागों में विभक्त किया है :

१- परिभाषासूत्र

२- बलानलसूत्र

परिभाषा का दूसरा पुराणोक्तसमेव है आरम्भ होता है। जिसका सभी वाधुनिक परिभाषिकों ने अनुसरण किया है। इस सम्प्रदाय के जाचार्यों ने परिभाषाओं की तीन वर्गों में विभक्त करके व्याख्यात किया है। नागोजिभट्ट ने भी इसी सम्प्रदाय का अनुसरण करते हुए परिभाषानुसूचक की रचना की है। इस पर लगभग तीस टोकारं ग्रन्थ विद्वानों द्वारा लिखी गई हैं जो कि इस ग्रन्थ को महत्ता की ओर भी अधिक बढ़ाती हैं।

परिभाषानुसूचक की रचना काल

प्रोफेसर पी.के. गोडे ने 'दो रिटैटिव श्रौतौल्लोकी वाफ सम वर्या वाफ नागोजिभट्ट' नामक निबन्ध में ८०० १००० काशी की आधार मानकर नागोजिभट्ट के साहित्य अर्चनात्मक श्रियाकलाप की १७०० ई० से १७५० ई० का सामयिक माना है। यही तथ्य ग्रन्थ विद्वानों के द्वारा भी पुष्ट है। यदि उक्त काल के आधार पर हम परिभाषानुसूचक की रचना काल निर्धारित करने का प्रयास करें तो परि-

१- P.K. Gode- Chronology of Nagajibhatta, printed in Indian Literary History, Vol. III, Poona

नागेश्वरीश्वर की रचना लगभग १७७० ई १७५० के मध्य हो हुई होगी ।
 क्योंकि परिभाषानुशेखर नागेश भट्ट की अन्तिम रचना है ऐसा अधिकारी
 विद्वानों का मत है । महाकवीपाण्ड्याय अम्बर खं पी० के० गौडे तथा
 अन्य विद्वानों ने भी परिभाषानुशेखर की नागेश की अन्तिम रचना ही
 माना है । दूसरे परिभाषानुशेखर के आन्तरिक विश्लेषण से प्राप्त प्रमाणों
 के आधार पर उद्देशानुशेखर, महाभाष्यकोपीपीत खं मंगला वादि ग्रन्थों
 का उत्तम रूप ग्रन्थ में मिलने से इस ग्रन्थ का उक्त मंगला वादि ग्रन्थों से
 उत्तरवाहीन होना स्पष्ट हो है ।

यही सधुय श्री० पी०के० गौडे ने भी अपने निबन्ध
 में स्वीकार दिया है ।^६ उनके अतिरिक्त नागेश भट्ट के अन्तर्गत अन्य संय
 नाथ पाण्डुपुत्र ने परिभाषानुशेखर की गया नामी व्याख्या में नागेश
 द्वारा की गई बार प्रस्तुत किए गए "अन्त्य" शब्द की व्याख्या करते
 हुए उपासी खं मंगला तथा उद्देशानुशेखर का निर्देश किया है । मंगला,

१- See- Introduction of Paribhāṣanusekhara
 Ed. by M.M. K.V. Abhyankar, Poona, p 1.

२- P.K. Gode, Chronology of Nagajibhatta, printed
 in Indian Literary History, Vol. III, Poona, p-217.

३- देखिए- परिभाषानुशेखर, डॉ० अम्बर, पूना, पृ० ३६, ५६, १३१,
 १८६, १६७

४- वही , पृ० ८३, १५७

५- वही , पृ० १५६, १६१

६-

७- देखिए- वही पृ० २१७-२१८

उद्योत स्व' शब्देन्दुशेखर का रचना काल प्रो० गोडे के अनुसार १७०० ई० से १७१० ई० के मध्य निश्चित होता है। अतः निश्चित रूप से परिभाषीन्दुशेखर की रचना १७०८ ई० के बाद ही हुई होनी चाहिए। लेकिन इस विषय में एक विप्रतिपत्ति यह भी है कि लघुशब्देन्दुशेखर तथा परिभाषीन्दुशेखर में किसीकी रचना पहले हुई। इस विषय में हम निम्न तथ्य प्रस्तुत करते हैं -

१- परिभाषीन्दुशेखर में सर्वत्र शब्देन्दुशेखर का ही निर्देश मिलता है, लघुशब्देन्दुशेखर का नहीं।

२- लघुशब्देन्दुशेखर में परिभाषीन्दुशेखर का निर्देश एक स्थान पर मिलता है।

इसके तथ्य की आधार मानकर वाराणसी के सम्पादित बृहच्छब्देन्दुशेखर के सम्पादक डा० सीताराम शास्त्री ने प्रथम भाग की भूमिका में परिभाषीन्दुशेखर के लघुशब्देन्दुशेखर में प्राप्त निर्देश की प्रशिक्षण या परिबर्धित माना है। अतः उनके मत में परिभाषीन्दु० की अपेक्षा लघु-शेखर की रचना पहले हुई होगी।

किन्तु इसके विपरीत यह मत भी मिलता है कि परिभाषीन्दु की रचना लघुशेखर से पहले हुई हो अतः रचनाक्रम इस प्रकार रहा हो- बृहच्छेखर स्व' मूल्या उद्योत परिभाषीन्दुशेखर, लघुशेखर। इसी

१- दैक्षिण- बम्बई सम्पादित, परिभाषीन्दुशेखर का पूरा संस्करण।

पृ० ३६, ५६, १३१, १८६, १६७

२- दैक्षिण- लघुशब्देन्दुशेखर (अव्ययीभावान्त) सम्पा० श्री पं० नन्दकिशोर शास्त्री, आर्युर्वेदाचार्य (लट्टीकीफे संस्करण) काशी सन् १९०५, पृ० २०६

३- बृहच्छब्देन्दुशेखर, संपा० डा० सीताराम शास्त्री प्रथम भाग भूमिका पृ० ४५

प्रमाण माना जाए तो परिभाषा-नु की रचना १७२० ई० तक ही चुकी होनी चाहिए। क्योंकि प्रोफेसर गोडे ने लघुशेखर की कुछ पाण्डुलिपियों की चर्चा की है जिनका लिपिकाल भी उन्होंने क्रमशः १७२१ एवं १७२४ ई० निर्दिष्ट किया है^१। अतः उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यह मानना पड़ेगा कि परिभाषा-नु की रचना लघुशेखर से पूर्व ही चुकी थी।

परिभाषा-नुशेखर में व्याख्यात परिभाषाओं का क्रम एवं संस्था निर्धारण

परिभाषाओं की संस्था तथा उनके क्रम निर्धारण के सन्दर्भ में व्याकरणांश में मतभेद है। यह तो परिभाषा पाठ है किंचित्मात्र परिचय रखेवाला व्यक्ति भी जानता है। वस्तुतः समग्र परिभाषाकारों या परिभाषावृत्तिकारों के मतों का पर्यालोचन हमारा अभिप्रेत नहीं है। बल्कि परिभाषा-नुशेखर में भी परिभाषाओं की संस्था एवं क्रम निर्धारण में विभिन्न संस्करणों एवं व्याख्याताओं में जो मत वैविध्य परिलक्षित होता है। उसके विषय में हम कुछ मुख्य संस्करणों के आधार पर इसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हैं।

प्रमुख रूप से तो नागेश भट्ट ने १३३ परिभाषाओं का संग्रह तथा उन पर वृत्ति लिखी है। किन्तु कुछ पृष्ठा संस्करणों के अंतर्गत है इस संस्था में न्यूनाधिकपरिलक्षित होता है। विशेष रूप से बनारस में प्रकाशित कुछ संस्करणों में एक परिभाषा और अधिक मिलती है। अतः कुल परिभाषाओं की संस्था १३४ ही जाती है। लेकिन बनारस के एक विशेष संस्करण में जो विजया टीका के साथ प्रकाशित है। एक परिभाषा कम है। और वहाँ कुल संस्था १३२ ही है। इसके अतिरिक्त नागपुर में मराठी

१- P.K. Gode, Chronology of Nāgojibhatta, Printed in Indian Literary History, Vol. III, Poona

कुवाद के साथ प्रकाशित एक संस्करण में परिभाषाओं की कुल संख्या १३३ ही मिलती है। किन्तु डा० एफ० कील्हार्न द्वारा सम्पादित तथा कैम्ब्रीज बन्कर द्वारा परिष्कृत पूजा के संस्करण में वस्तुतस्तु १३३ ही परिभाषाओं को संगृहीत किया है। किन्तु प्रसुत रूप में तो १२२ परिभाषाएँ दी हैं। ११ परिभाषाओं को उन्होंने विशिष्ट माध्यम से विशिष्ट समुदाय में सम्बन्धित करके प्रकाशित किया है। जो अन्यत्र किसी संस्करण में इस प्रकार नहीं दर्शाया है।

इस संस्करण में यद्यपि परिभाषाएँ १३३ ही दी हैं किन्तु प्रसुत रूप में १२२ परिभाषाओं की संख्या को ही प्रदर्शित किया है। ११ परिभाषाओं का विशिष्ट क्रम जो इस संस्करण में दिया है। वह निम्न प्रकार है -

परिभाषा संख्या ६३ के साथ ६ अन्य परिभाषाओं को ६३-१, ६३-२, - ६३-१० तक इस क्रम में रखा है^१।

तथा परिभाषा संख्या १२० के साथ दो और परिभाषाओं को इसी क्रम में (१२०, १, १२०, २, १२०, ३) रखा है^२।

परिभाषाओं का यह क्रम डा० कील्हार्न ने निर्धारित किया हुआ है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य संस्करणों में भी परिभाषाओं के क्रम एवं उनकी संख्या में भेद मिल जाता है।

एक विश्लेषण के अनुसार नागेश भट्ट ने परिभाषानुसूची में ऐसी ग्यारह परिभाषाओं का उल्लेख किया है जो उनके पूर्ववर्ती वाचार्थों के द्वारा निर्दिष्ट नहीं हैं। ये ग्यारह परिभाषाएँ निम्न-

लिखित है^१ -

- १- परान्नित्यबलवत्
- २- शब्दान्तरात्प्राप्नुवतः शब्दान्तरे प्राप्नुवतश्चानित्यत्वम्
- ३- यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विधन्यते न तदनित्यम् ।
- ४- यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते तदप्यनित्यम्
- ५- स्वरभिन्नस्य प्राप्नुवन्निधिरनित्यो भवति
- ६- पूर्वोत्तरफलनिमित्तकायत्तिपूर्वमन्तराणोऽप्येवदेशो न
- ७- अन्तराणायप्यपादो बलीयान् ।
- ८- तपमादौ यथन्यत्र चरितार्थस्तद्व्यन्तराणवाच्यो ।
- ९- नजघटितमनित्यम् ।
- १०- जातिदेशिकमनित्यम् ।
- ११- एकस्यावाक्ये स्वरितप्रयोगाद्वितीयस्यास्तृतीयस्याश्च न भविष्यति ।

उक्त ग्यारह परिभाषाओं के विषय में यह स्पष्ट हो जाता है कि यह परिभाषाएँ नागेश जी के द्वारा जी० दी गयी हैं । इसके बाद भी यह विचारणीय है कि ये परिभाषाएँ नागेश जी स्वयं निर्मित करके जी० दी हैं अथवा उनसे पूर्व इनके निर्देश थे ।

परिभाषानुशेखर के तीन विभाग

परिभाषानुशेखर की समस्त परिभाषाओं को तीन उपविभागों में विभक्त किया गया है । यह वर्गीकरण सम्मतः व्या-

१- परिभाषानुशेखर, भूमिका पृ० १० सम्पा० कै०जी० जम्कर, पूना १९६२

व्याख्याओं के द्वारा ही किया गया है। क्योंकि नागेश भट्ट ने परिभाषा-
न्दुशेखर में कहीं भी इस प्रकार का कोई निर्देश नहीं किया है। व्याख्या-
ताओं ने इन तीनों विभागों की क्रमशः ये नाम दिए हैं -

१- शास्त्रत्वसम्पादक प्रकरण

२- बाधबीज प्रकरण

३- साधकप्रकरण

शास्त्रत्व सम्पादक प्रथम प्रकरण में प्रथम स्तौति
(३७) परिभाषाओं को रखा गया है। यह प्रकरण परिभाषान्दुशेखर का
सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकरण में पाणिनि सूत्रों एवं नियमों की
व्याख्या की गयी है। विशेष रूप से परिभाषासूत्रों की चर्चा इस प्रकरण
में मिलती है। पाणिनि के उत्तरवर्ती वैयाकरणों के परिभाषा सूत्रों की
चर्चा भी इसमें की गयी है। इसी प्रथम प्रकरण में संज्ञा एवं परिभाषा के
स्वरूप का भी विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त जिन विषयों पर
इस प्रकरण में विचार किया गया है उनके नाम हैं -

कामिन्, जादेश, शब्द , अर्थ क्लृप्ति, प्रत्यय-
लक्षण, तदन्तविधि , एवं व्यपदेशिबद्भाव इत्यादि ।

परिभाषान्दुशेखर के बाधबीज नामक द्वितीय
प्रकरण में ३८ वीं परिभाषा से ७० वीं परिभाषा तक कुल ३३ परि-
भाषाओं को रखा है। इस प्रकरण में जिन परिभाषाओं का एकल किया
गया है उनका प्रयोजन वैयाकरण नियमों की गणना एवं मुख्यता को निर्धा-
रित करना है। तत्ताद् शब्दों की मिक्ष के लिए उनके लिए प्रयोज्य नियमों
की प्राथमिकता का विचार किया है। क्लृप्त नियमों का बाध करके

उपयुक्त नियम की प्राथमिकता देने के कारण ही इस प्रकरण का नाम बाध बीज रखा है।

शास्त्र रीति नामक तीसरे प्रकरण में ६३ परिभाषाओं को लिया गया है। ७१ वीं परिभाषा है अन्त तक सभी परिभाषाएं इस प्रकरण में रखी गयी हैं। इस प्रकरण में विविध प्रयोगों को सिद्ध करने के लिए जिन नियमों की आवश्यकता होनी चाहिए उनका विवरण दिया गया है।

विभिन्न पारिभाषिक ग्रन्थों में परिभाषानुशेखर का स्थान

जैसा कि इस अध्याय में दिए गए ऐतिहासिक विवरण से ही स्पष्ट है कि नागेशभट्ट के परिभाषानुशेखर से पूर्व परिभाषा पाठ पर कई ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। तथापि इन ग्रन्थों के होते हुए नागेश जी के परिभाषानुशेखर की विदग्धन ग्राह्यता एवं सार्वभौमिक प्रतिष्ठा की बाज भी देखकर इस ग्रन्थ की एकलक्ष्यता का महज अनुमान लगाया जा सकता है। निश्चित ही परिभाषानुशेखर परिभाषापाठ पर एक अद्वितीय ग्रन्थ है।

अष्ट अध्याय

पाणिनीय व्याकरण का एक महान्तम ग्रन्थ है । वस्तुतः पाणिनीय व्याकरण को परिपूर्णता कात्यायन की वार्तिकों एवं पाञ्चलि के व्याख्यान महाभाष्य के साथ ही होती है । महाभाष्य केवल एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें सभी वार्तिकों की सूक्ष्मरूप में संकलिप्त किया गया है । अतः निःसन्देह महाभाष्य संस्कृत व्याकरण का वार्तिकीय ग्रन्थ है । अष्टाध्यायी क्रम से लिखे गए इस ग्रन्थ का अध्ययन प्रत्येक वैयाकरण के लिए अनिवार्य ही जाता है । महाभाष्य का अध्ययन करके प्रत्येक विद्वान् अपने को गौरवान्वित समझता है । अतः महाभाष्य जैसे महान्तम ग्रन्थ पर अनेकों विद्वानों ने व्याख्यान लिखी हैं । विद्वानों में इस तरह की धारणा रही थी कि महाभाष्य पर लेखनी चलाकर विद्वत्समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त की जा सकती है ।

हमारे प्रबन्ध नायक नागेश भट्ट ने भी महाभाष्य की एक महत्त्वपूर्ण व्याख्या लिखी है । 'उद्योत' नाम से प्रसिद्ध यह व्याख्या महाभाष्य की प्रसिद्ध 'प्रदीप' नामक व्याख्या की प्रतीक मानकर लिखी गई है । नागेश भट्ट के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने महाभाष्य का गुरुमुख से साँ बार अध्ययन किया था । महाभाष्य की विशेषज्ञता की प्रमाणित करने के लिए स्वयं नागेशभट्ट का यह वाक्य उचित ही है -

“ पातञ्जलमहाभाष्यैकतुष्टपुरिपरिमः । ”

यद्यपि नागेश जी की उद्योत नामक व्याख्या महाभाष्य के प्रतीकों पर आधार-

रित नहीं है परन्तु कंथट की प्रदीप टीका के प्रतीकों को आधार मानकर महाभाष्य की ही व्याख्यात किया है। महाभाष्य स्व प्रदीप के बीच में समझकर स्थापित करते हुए गुढार्थों को स्पष्ट किया गया है।

महाभाष्य की विविध व्याख्यान

महाभाष्य पर अधिकांश विद्वानों ने व्याख्यान लिखा है। आज ये सभी व्याख्यान मुद्रित रूप में तो नहीं मिलती हैं। कुछ व्याख्यान मुद्रित हैं तथा कुछ पाण्डुलिपि के रूप में ही हैं। महाभाष्य की व्याख्या की परम्परा जहाँ से उपलब्ध होती है वह केन्द्रविन्दु भट्टहरि है। भट्टहरि ने पूर्व भी महाभाष्य की व्याख्यान ही चुकी होगी। ऐसा अनुमान भट्टहरि की उपलब्ध व्याख्या के अनुशीलन से किया जा सकता है। भट्टहरि ने कई स्थानों पर 'अन्ते', 'अपरे', 'केचित्' इत्यादि शब्दों का प्रयोग अनेक बार किया है। अतः इन भट्टहरि के पूर्व व्याख्याओं का अनुमान सत्य ही लगाया जा सकता है।

भट्टहरि के नाम से दो व्याख्याओं की सूचना मिलती है। यद्यपि इनमें से एक भी पूरी उपलब्ध नहीं होती है। भट्टहरि की दोनों व्याख्याओं के नाम आक्रोष्ट ने निम्नलिखित प्रकार हैं -

१- महाभाष्यत्रिपदीव्याख्यान

२- महाभाष्यदीपिका

भट्टहरि के बाद में भी अनेक व्याख्याताओं की चर्चा पं० श्रीमान् जी ने की है।

१- युधि० मी०, सं० व्या० शा० का इति० भाग १ पृ० ३६३

पं० भीमासक ने बिन विद्वानों की नामावली दी है उनके नाम हम यहाँ उद्धृत करते हैं ।

- १- अज्ञातकर्तृक महाभाष्य की व्याख्या की चर्चा की है^१ ।
- २- ज्येष्ठकलश (इनकी व्याख्या का नाम निर्देश नहीं किया है ।
कुमान से सम्भावना मात्र दी है ।^२)
- ३- मैत्रेयरणित (मैत्रेयरणित विरचित किसी महाभाष्य टीका की सम्भावना कुछ सन्दर्भ ग्रन्थों की उक्तियों के आधार पर की है ।^३)
- ४- पुरुषोत्तमदेव (पुरुषोत्तम देव विरचित किसी 'प्राण-पणा' महाभाष्य की व्याख्या का स्मृत किया है ।^४)
- ५- कुमारतातय-
(कुमारतातय ने भी महाभाष्य की एक व्याख्या लिखी थी ऐसा स्मृत मिलता है ।^५)
- ६- अज्ञातनामा - (एक अन्य अज्ञातनामा व्याख्या की सम्भावना की गई है ।^६)

१-	देखिए-	युधि० मी० -	सं० व्या० शा० का इति० भाग १	पृ० ३६३
२-		पृ० ३६६
३-		पृ० ३७०
४-		पृ० ३७१
५-		पृ० ३८४
६-		पृ० ३८५

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी व्याख्यारं हैं जिनका नाम निर्देशपूर्वक उनके व्याख्याताओं का भी परिचय दिया गया है। यहाँ हम उन्हें उद्धृत करते हैं -

केटालोगस केटालोगस में निम्नलिखित व्याख्याओं के नाम मिलते हैं^१ -

- ७- शब्दबुद्धी - राजनसिंह
- ८- महाभाष्यप्रदीप - कैयट
- ९- प्रकाश - नारायणशेखरः
- १०- सूक्तिरत्नाकरः - नारायणशेखरः कृष्णात्मजः
- ११- सूक्तिरत्नाकरः नृसिंह जीवदेवात्मजः
- १२- महाभाष्यादर्शः लक्ष्मणः मुरारिसुतः
- १३- महाभाष्यसिद्धान्त
- रत्नप्रकाश शिवरामेन्द्र परम्बती
- १४- महाभाष्यगूढार्थदीपिका एताशिवः
- १५- महाभाष्यत्रिपदी
- व्याख्यान भर्तृहरि
- १६- महाभाष्यदीपिका भर्तृहरि

इनके अतिरिक्त पं० सीमासिंह जी ने कुछ व्याख्याताओं के नाम अपने ग्रन्थ में दिए हैं। वे निम्नवत् हैं^२ -

१- देखिए- महाभाष्य , निर्णयसागर प्रेस, बम्बई , मुद्रिका पृ० १६ (टिप्पणी नं० १)

२- द्रष्टव्य- सं० व्या० शा० का वृत्ति० , भाग १ पृ० ३७६, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५

- १७- चिन्तामणि - धनेश्वर
 १८- नीरीदर - विष्णुमित्र
 १९- महाभाष्यतत्त्वविवेक - नीलकण्ठ वाजपेयी
 २०- महाभाष्यप्रकाशिका - शैलविष्णु
 २१- विद्वन्मुकुटगण - प्रयागवैकटाद्वि
 २२- कुपडा - तिरुमलयज्वा
 २३- महाभाष्यविवरण - नारायण
 २४- महाभाष्यरूपकृति - सर्वस्वरदीनित
 २५- शाब्दिकचिन्तामणि - गोपालकृष्ण शास्त्री

इनके अतिरिक्त आधुनिक युग में भी महाभाष्य की सुबोध करने की दृष्टि से कुछ हिन्दी भाषा में भी महाभाष्य की टीकाएँ लिखी हैं। इस सम्बन्ध में दो विद्वानों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वे हैं -

- २६- पं० युधिष्ठिर मीमांसक
 २७- पं० चारुदेव शास्त्री

महाभाष्य की उक्त सभी व्याख्याओं में कैट कृत प्रदीप व्याख्या का स्थान सर्वोपरि है। पठन-पाठन में सर्वाधिक इसी व्याख्या के प्रचलित होने से इसका महत्त्व स्वयं प्रमाणित होता है। दूसरे 'प्रदीप' पर भी जेकॉ विद्वानों ने टीकाएँ लिखी हैं। यह भी इस व्याख्या के गौरव की और भी बढ़ाने वाली बात है। 'प्रदीप' की इन जेकॉ व्याख्याओं में से ही उपोक्त एक अन्य साधारण व्याख्या है। नागेश

१- युधिष्ठिर मीमांसक ने कैट प्रणीत प्रदीप व्याख्या के निम्नलिखित व्याख्याकारों के नाम उद्धृत किए हैं -

देसिए- सं० व्या० शा० का इति० भाग १ पृ० ३६६

जी ने महाभाष्य का सम्मालोचन करने के अनन्तर इसका प्रणयन किया था ।

उषीत का रचनाकाल

नागेश भट्ट ने व्याकरण शास्त्र पर चिन ग्रन्थों की रचना की है उनमें उषीत एक अत्यन्त दीर्घायु एवं गूढ़ तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । महाभाष्य की ग्रन्थरत्न का व्याख्यान होने से ही इसका गाँव स्पष्ट है । जहाँ नागेश जी ने व्याकरणशास्त्र पर ही लगभग बीस ग्रन्थों का निर्माण किया है वहाँ यह प्रश्न सख्त ही उठता है कि उन्होंने उषीत की रचना कब की होगी ? उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उषीत का निर्माण शब्देन्दुशेखर एवं मञ्जूषा के बाद किया होगा ।

उषीत में शब्देन्दुशेखर एवं मञ्जूषा के निर्देश मिलते हैं इसकी पुष्टि होती है । उषीत में निर्दिष्ट मञ्जूषा एवं शब्देन्दुशेखर के सूक्तों को हम द्वितीयाध्याय में पृ० २३ पर उद्धृत कर चुके हैं ।

छा० पी०के० गोटे के अनुसार मञ्जूषा, शब्देन्दुशेखर एवं उषीत की रचना सन् १७०८ ई० तक हो चुकी थी । छा० गोटे के कथन से इन ग्रन्थों के पारिपर्य के विषय में कुछ भी स्पष्ट नहीं होता है । अतः इनके अनुसार यही प्रतीत होता है कि मञ्जूषा एवं उषीत की रचना कुछ अन्तर से एक ही समय में हुई होगी । किन्तु उषीत में मञ्जूषा एवं शेखर के निर्देश मिलते पर उषीत का मञ्जूषा एवं शेखर से पश्चाद्भावित्व सिद्ध हो जाता है । अतः व्याकरण पर नागेश जी ने इन तीन ग्रन्थ रत्नों की रचना पहले की थी , जिसका क्रम यह होना चाहिए-१ बृहच्छब्देन्दुशेखर २- वैयाकरणसिद्धान्त

मंजूणा १- प्रदीपोद्योत । ये तीनों ही ग्रन्थ अपने अपने नीचे में महत्त्व-पूर्ण माने जाते हैं । संस्कृत व्याकरण में नागेशत्रयी का स्थान विशिष्टतम है । यद्यपि इनके अतिरिक्त भी व्याकरण पर अनेक ग्रन्थ नागेश जी के लिखी हुई हैं किन्तु उक्त तीनों ही ग्रन्थ स्वरूप एवं प्रतिपाद्यवस्तु की दृष्टि से सभी ग्रन्थों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । अन्य व्याकरण ग्रन्थों का प्रणयन इन तीनों ग्रन्थों के बाद ही हुआ है । क्योंकि प्रायः सभी ग्रन्थों में उक्त तीनों ग्रन्थों के निर्देश मिलते हैं । परिमाणेन्दुशेखर में प्रदीपोद्योत का स्मरण नागेश जी अनेक बार किया है ।^१

परिमाणेन्दुशेखर में मंजूणा^२ एवं शब्देन्दुशेखर^३ का भी निर्देश मिलता है ।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि उद्योत की रचना मंजूणा एवं शब्देन्दुशेखर के अन्तर हुई थी । अतः इसका रचना काल १७०० ई० के आस पास ही होना चाहिए ।

१- (क) ध्वनितं कैदं नलोपः सुप् (८-२-२) इति सूत्रे भाष्य

इति तत्रैव भाष्यप्रदीपोद्योते निरुक्तिम् ॥

- परिमाना सं० ५०

(ख) ध्वनितं कैदमिकी गुण (१-१-३) इति सूत्रे भाष्य इति भाष्य-

प्रदीपोद्योते निरुक्तिम् ॥ परिमाना सं० ६४

परि० शै०, सम्पादक- कै०वी० अय्यङ्गर पृ० ८३, १४७ पृ०, १६६२

२- (क) निरुक्तिं कैतन्यमंजूणायाम् । परिमाना सं० ७४

(ख) इति मंजूणायां विस्तरः ॥ परिमाना सं० ११२

परि० शै०, संपा० कै०वी० अय्यङ्गर पृ० १५६, १६१, पृ० १६६२

३- शब्देन्दुशेखरेनिरुक्तिम् (परि० सं० २२) पृ० ३६ एवं परि० सं० ३३ पृ० ५६

निरुक्तिं कैदमिश्रः शब्देन्दुशेखरे (परि० सं० ५६ पृ० १३१) शब्देन्दुशेखरे-

दृष्टितम् (परि० सं० १०५ पृ० १८६) निरुक्तिं च तनादिशेखरे शब्देन्दुशेखरे ।

स्वरूप एवं संरचना

महाभाष्य स्वयं ही एक दीर्घकाय ग्रन्थ है। अतः स्वाभाविक है कि महाभाष्य की व्याख्या स्वरूप की दृष्टि से विशालकाय हो जानी चाहिए। उपोत्त का स्वरूप अत्यन्त विचाल है। महाभाष्य में अष्टाध्यायी क्रम से सूत्रों का व्याख्यान किया गया है। उसी क्रम से कैट ने महाभाष्य का व्याख्यान किया है। कैट की व्याख्या शैली अधिकारितः प्रतीकात्मक रही है तथा पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है। इस कारण से महाभाष्य सुगमार्थ होने की अपेक्षा और भी गूढ़ार्थ हो जाता है। इन गूढ़ार्थों को नागेश जी ने स्पष्ट किया है। उपोत्त की शैली सरल एवं सुगम है। तथा कैट प्रयुक्त पारम्परिक शब्दों का स्पष्टीकरण स्फुट रूप से किया है। यद्यपि उपोत्त का निर्माण प्रदीप के प्रतीकों को आधार मानकर किया गया है किन्तु विनय को स्पष्ट करने के लिए महाभाष्योपन्यस्त मत्त का निर्देश यथास्थान किया है। प्रायः बहुधा 'भाष्ये' कहकर नागेश जी महाभाष्योक्त मत्त की ओर संकेत करते हैं।

प्रतिपद एवं स्पष्ट व्याख्यान होने से उपोत्त प्रदीप से बहुत अधिक विस्तृत है।

नागेश के अन्य ग्रन्थों में उपोत्त का महत्त्व

नागेश जी ने व्याकरण के विभिन्न विषयों पर स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थों की रचना की है। अतः मंजूषा, शब्देन्दुशेखर तथा परिभाषा-शब्देन्दुशेखर आदि के सभी स्कन्धशीय ग्रन्थ हैं। उपोत्त एक ऐसा ग्रन्थ है जो एक मात्र ग्रन्थ व्याकरण के प्रायः सभी चीजों में विचार करता है। चाहे वह व्याकरण दर्शन की समस्या हो या प्रक्रिया पद्म की अपेक्षा परि-

भाषा पाठ की समस्या ही या फिर वाटाघ्यायी के सूत्र की व्याख्या । प्रत्येक पत्र पर उपात में विचार किया गया है। मधुषा में जहाँ स्फोट का निरूपण विस्तार से किया है । उसी से सम्बन्धित चर्चा उपात में भी मिलती है । पदस्थानिक में जहाँ शब्द के स्वरूप पर विचार किया गया है । उसी सन्दर्भ में उपात में भी चर्चा मिलती है । विस्तार से ती 'तपर-स्तत्काल' सूत्र के भाष्य में तथा छठी सन्दर्भ में उपात में चर्चा की गई है ।

छठी प्रकार शब्देन्दुशेखर में जिन विषयों पर विचार किया गया है । उन विषयों की चर्चा प्रणवश महाभाष्य तथा प्रतीपोषात में भी की गई है। छठी पुष्टि शब्देन्दुशेखर में बहुधा महाभाष्य की उक्तियों का निर्देश मिलने से ही हो जाती है ।

छठी प्रकार प्रणवश परिभाषाओं की भी चर्चा उपात में मिल जाती है । छठी का रचित करते हुए नागेश भट्ट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ परिभाषाशेखर में भी उपात का निर्देश किया है ।

महाभाष्य की अनेक व्याख्याओं में उपात का स्थान

किसी ग्रन्थ के महत्त्व की परीक्षा करते के लिये आवश्यक है उस ग्रन्थ की विशेषता की समझना । उसी विषय के अन्य ग्रन्थों में उसके महत्त्व की जानने के लिए तत्साद् ग्रन्थों से उसके सामान्य या वैशिष्ट्य की जानना अनिवार्य है । उपात के अतिरिक्त महाभाष्य की अनेक व्याख्याएँ हैं जिनका निर्देश हम कर चुके हैं । किन्तु व्यवहार में हम देखते हैं कि प्रतीपोषात की प्रसिद्धि जितनी है उतनी अन्य किसी व्याख्या

की नहीं हैं। इसका मुख्य कारण है इस व्याख्या के अपने गुण।

अन्य व्याख्याओं की अपेक्षा इसमें विषय की अधिक स्पष्टता के साथ प्रतिपादित किया है। शैली की सरलता इसकी एक महती विशेषता है। व्याकरण विषय यद्यपि एक गम्भीर विषय है। उसमें महाभाष्य स्व 'प्रदीप' की शैली स्तद्विषयानुरूप गम्भीर ही है। किन्तु उपात्त की यह विशेषता है कि व्याकरण के गम्भीर विषयों का विचार भाषा की सरलता के कारण सरल ही लगता है। सरल भाषा के साथ साथ विषयोपन्यास इतना सुबोध शैली से किया गया है कि अन्यत्र महाभाष्य के प्रारंभ में ऐसा नहीं मिलता है। कंठोक्त कीदान्तों का महाभाष्य के साथ सामंजस्य करते हुए बड़ी क्लृप्त शैली में इसकी रचना की है। अपने इन्हीं गुणों के कारण महाभाष्य के साथ प्रदीप स्व उपात्त का अध्ययन स्वंत्र हो रहा है। इसका यही कारण है कि अन्य टीकाओं में महाभाष्य की स्पष्ट करने की वह शक्ती नहीं है। जो प्रदीपोपात्त में है। विद्वत्समुदाय में यह व्याख्या सर्वाधिक प्रचलित होने से इसके महत्त्व की बात और पुष्ट होती है।

उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए कहा जा सकता है कि महाभाष्य की विविध व्याख्याओं में प्रदीपोपात्त का स्थान सर्वापरि है। यह स्थान इसके अनेक गुणोक्त होने के कारण विद्वन्मण्डल में सर्वाधिक प्रचलित होने से ही है।

महाभाष्यप्रदीपोपात्त के संक्षिप्त सूत्रार्थ के साथ साथ नागेश भट्ट के प्रायः सभी बड़े एवं प्रमुख वैयाकरण ग्रन्थों की वर्त्ता हम इस प्रबन्ध में कर चुके हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भी नागेश भट्ट के कुछ वैयाकरण ग्रन्थ हैं। जिनका निर्देश कैटालोग कैटालोगरम एवं न्यू कैटालोग

कैटालीगरम में मिलता है तथा जिसका उल्लेख हम हम प्रबन्ध में कर चुके हैं ।
नागेश जी के जिन व्याकरण ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है वे ये हैं -

- १- कारकार्थनिर्णय
- २- तात्पर्यहीप्ति
- ३- तिङन्तग्रन्थ
- ४- धातुपाठवृत्ति
- ५- णैरणिवादाथ
- ६- वैयाकरणकारिका
- ७- शब्दानन्तागारसमुच्चय
- ८- सुप्तिङन्तागारसमुच्चय
- ९- णैरणाविटि सूत्रार्थ विचार
- १०- विष्णमपदी
- ११- प्रत्यास्थान ग्रन्थ

इन ग्रन्थों में से कुछ के विषय में ही अन्य प्रमाण मिलते हैं । उक्त ग्रन्थों में से एक ग्रन्थ ऐसा है जो मुद्रित हो चुका है ।

प्रत्यास्थानग्रन्थ

इस ग्रन्थ का प्रकाशन 'काशिक राजकीय संस्कृत महाविद्यालय' 'किन्तु सम्प्रति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय' की पत्रिका 'सारस्वती गुणमा' के दो भिन्न भिन्न अंकों में हुआ है^१ ।

- १- देखिए- सारस्वती गुणमा (सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि०वि० की शोध पत्रिका) द्वितीय वर्षांक पृ० ७३ दिसम्बर १९४३ ई० एवं वही , तृतीयवर्षांक पृ० ७३ दिसम्बर १९४५ ई०

लघु ग्रन्थ के सम्पादन का यह महान् कार्य जिन दो विद्वानों ने संयुक्त रूप से किया है उनके नाम हैं -

१- पं० नारायणशास्त्री लिस्ते

२- पं० कान्तशास्त्री फडके

यह लघु ग्रन्थ वस्तुतः नागेश जी का कोई स्वतन्त्र मौलिक ग्रन्थ तो नहीं है। किन्तु महाभाष्य में जिन सूत्रों एवं सूत्रांशों का भगवान् फाजलि ने प्रत्याख्यान किया है उन प्रत्याख्यात सूत्रों का यह संग्रह है। प्रत्याख्यान से यहाँ इनका तात्पर्य निषेधकरना या बहिष्कार करने से है। जैसीकि व्याकरण की परम्परा रही है सूत्रों एवं सूत्रांशों की समीक्षा करने की। अतः उगी परम्परा में फाजलि ने सूत्रों के प्रत्याख्यान की कर्वा की है। इन्हीं महाभाष्योक्त प्रत्याख्यात सभी सूत्रों का सूत्र संग्रह नागोजि भट्ट ने इस ग्रन्थ में किया है।

प्रत्याख्यान संग्रह के अतिरिक्त जो ग्रन्थ हैं इन ग्रन्थों के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि इन ग्रन्थों का हमें निर्देश मात्र कैटालोग कैटालोगरम तथा न्यू कैटालोग कैटालोगरम में मिलता है। इसके अतिरिक्त इन ग्रन्थों की मुद्रित या पाण्डुलिपि के रूप में देखने का सामान्य हमें नहीं मिल पाया। कई ग्रन्थाख्याओं में हमने जाकर भी इन ग्रन्थों की प्राप्ति करने का प्रयास भी किया है। जिन ग्रन्थाख्याओं में हमने प्रयास किया है उनके नाम इस प्रकार हैं -

१- सरस्वती मदन पुस्तकालय, वाराणसी

२- इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय, इलाहाबाद

३- गंगानाथ फा प्रोच्य विद्या मण्डल प्रतिष्ठान,

इलाहाबाद

४- सिन्धिया प्राच्य विद्या शोध मन्दिर, उज्जैन

इन पुस्तकालयों में संगृहीत पाण्डुलिपियों की सूची देखकर हमने इनकी प्राप्ति करने का प्रयास किया है किन्तु हमारा प्रयास असफल ही रहा है। फिर भी इन ग्रन्थों के विषय में हम जेना समझते हैं वह इस प्रकार है।

विष्णुमफ्दी

इस ग्रन्थ के विषय में यह सूक्ति मिलती है कि यह भट्टोजिदीक्षित विरचित 'शब्दकोशसुम' की टीका है। इसके मुद्रित होने की हमें कोई सूचना प्राप्त नहीं है। यद्यपि शब्दकोशसुम तो मुद्रित हुआ है वह भी सम्पूर्ण उपलब्ध नहीं है। किन्तु विष्णुमफ्दी के मुद्रण की हमें कोई सूचना नहीं है। इस व्याख्या की पाण्डुलिपि हमें अवश्य प्राप्त हुई है। वह मिली है 'सिन्धिया जोरियन्टल रिपर्स इन्स्टीट्यूट' उज्जैन में। इसकी ग्रन्थ संख्या ६७६ है।

गौरणवादायं एवं गौरणाविटिषूनायंविचार

इस ग्रन्थ के विषय में सूक्ति मिलती है कि यह बृहच्छब्देन्दुशेखर एवं लघुशब्देन्दुशेखर के अर्थों पर आधारित है। यद्यपि यह ग्रन्थ हमें देखने की नहीं मिला है। न तो मुद्रित तथा नाही पाण्डुलिपि के रूप में। इन दोनों ग्रन्थों के विषय में एक और सम्भावना होती है। वी यह कि यह भिन्न भिन्न दो ग्रन्थ हैं या एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं। सम्भव है कि एक ग्रन्थ का दो नामों से निर्देश कर दिया हो और एक ही ग्रन्थ के दो नाम कुछ भेद से मिलने पर दो ग्रन्थ समझने की प्रान्ति हो गयी। हमारी यह सम्भावना तब तक रहेगी जब तक इन ग्रन्थों से हमारा सामनात्कार नहीं हो पाता।

विद्वज्जनों से सानुरोध अपेक्षित है कि नागेश जी के इन ग्रन्थों के विषय में यदि कोई सूचना हो तो वह अवश्य सूचित करें।

इसी प्रकार नागेश जी के अन्य वैयाकरण ग्रन्थों के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु यही प्रतीत होता है যে भी कोई ऐसी ही तत्त्व ग्रन्थ होगी। जो व्याकरण के किसी पक्ष के एकदेश विशेष पर आधारित होने चाहिए।

वस्तुतः इन ग्रन्थों के विषय में यह आनुमानिक बातें हैं। निश्चित रूप से तो इन ग्रन्थों के बिना ऐसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

वैयाकरण ग्रन्थों के अतिरिक्त भी नागेश जी ने अन्य शास्त्रों पर आधारित अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया हुआ है। नागेश जी क्योंकि मूल रूप में वैयाकरण थे। अतः प्राग्वश अन्य ग्रन्थों में भी नागेश जी ने व्याकरण विचारक चर्चा की है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम यह सुक्त कण्ठ से कह सकते हैं कि नागेश भट्ट ने व्याकरण के प्रायः सभी पक्षों पर विशेष अध्ययन किया है तथा व्याकरण का गम्भीर समस्यार्थों पर विचार किया है। व्याकरण में नागेश भट्ट ने एक नवीन परम्परा को जन्म दिया है जो सम्प्रति अध्ययन में सर्वाधिक व्यवहृत हो रही है।

सप्तम अध्याय

सप्तम अध्याय

परम वैयाकरण नागेश भट्ट ने संस्कृत साहित्य की जो अमूल्य समृद्धि प्रदान की है वह सर्वविदित है। द्वितीय अध्याय में उद्धृत नागेश जी की ग्रन्थ सूची के आधार पर उनके लगभग बीस शीटे और बड़े ग्रन्थ रत्न संस्कृत व्याकरणशास्त्र पर मिलते हैं। चिरकाल की साधना के परिणामस्वरूप जो प्रभाव नागेश जी ने संस्कृत व्याकरण पर डोड़ा है उतना किसी अन्य विद्वान् का प्रभाव इस क्षेत्र में परिलक्षित नहीं होता है। संस्कृत व्याकरण पर नागेश जी के ग्रन्थों का साम्राज्य पूरी तरह छाया हुआ है। अतः नागेश जी के ग्रन्थों की क्षात्री प्रतिष्ठा को देखते हुए हमने 'नागेश भट्ट का संस्कृत व्याकरण की योगदान' इस विषय पर विचार किया है।

नागेशभट्ट पाणिनीय परम्परा के वैयाकरणों में ही गिने जाते हैं। नागेश जी ने इस परम्परा के प्रायः सभी पक्षों पर विचार किया है। व्याख्याओं एवं स्वतन्त्र ग्रन्थों के माध्यम से अनेक प्रान्तियों को दूर करते हुए कई नवीन धारणाओं को जन्म दिया है। नागेश जी के द्वारा प्रतिपादित इन नवीन धारणाओं के अनुसार उनके शिष्यों एवं अनुयायियों ने व्याकरण के अध्ययन की एक नवीन धारणा प्रवर्तित कर दी जिसके जन्मदाता नागेश को माना जाता है। इसके परिणामस्वरूप व्याकरण का एक पूरक विभाग बन गया जिसे आज भी नव्य व्याकरण के नाम से जाना जाता है।

संस्कृत भाषा का व्याकरण विश्व के विद्वानों की ताजमहल के समान ही बख्ति करता बाया है। इस व्याकरण की आधार-शिला यदि महर्षि पाणिनि ने रखी थी तो कला स्थापन का कार्य नागेश या नागेशी भट्ट ने किया, यह कला कृत्य ही नहीं होगी। नागेश जी के इस योगदान का ही मूल्यमान प्रस्तुत प्रबन्ध में दिया गया है।

नागेश भट्ट ने पूर्व संस्कृत व्याकरण पूर्ण रूप से विकसित था। लोक विद्वान् इस क्षेत्र में कार्य कर चुके थे। डा. नागेश भट्ट ने जिन परिस्थितियों में व्याकरण पर काम किया उसका विवरण हमने प्रथमाध्याय में दिया है। नागेश भट्ट ने पूर्व संस्कृत व्याकरण की क्या स्थिति थी जमा कितना कार्य संस्कृत व्याकरण पर ही हुआ था जब नागेश जी ने अपनी लेखनी चलाई। इसका ऐतिहासिक विवरण हमने प्रथमाध्याय में दिया है। जैसाकि हम पहले भी कह चुके हैं कि नागेश भट्ट पाणिनीय परम्परा के ही संस्थापक थे। डा. पाणिनि ने आरम्भ करते कौण्टभट्ट तक हमने व्याकरणशास्त्र का ऐतिहासिक परिचय संक्षेप में दिया है।

परन्तु: संस्कृत व्याकरण के लिए नागेश भट्ट के योगदान की भली भाँति देखने के लिए इस ऐतिहासिक परिचय की आवश्यकता इसलिए है कि नागेश जी ने पूर्व संस्कृत व्याकरण की स्थिति क्या थी यह जानने के बाद ही निश्चय किया जा सकता है कि नागेश जी का संस्कृत व्याकरण के लिए क्या योगदान रहा। यह ऐतिहासिक परिचय हमने शास्त्रमानु-सार न देकर विमलरूप में प्रस्तुत किया है जिसका उपलब्धि हमने प्राक्कथन में कर दिया है।

नागेशभट्ट से पूर्ववर्ती व्याकरणों का संक्षिप्त

परिचय देने के अनन्तर हमने महामहोपाध्याय नागेश भट्ट के जीवन वृत्त से सम्बन्धित जानकारी देने का प्रयास किया है। व्याकरण के लिए नागेश जी के योगदान को जानने के लिए उनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थों का ज्ञान होना अनिवार्य है। विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जबकि नागेश जी के ग्रन्थों की संस्था के विषय में सन्देह नहीं है। इस प्रकार की समस्याओं पर द्वितीयाध्याय में विचार किया है। इस सन्दर्भ में अन्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत गौणणात्मक तथ्यों की भी चर्चा की है जिन्होंने नागेश जी की कृतियों के विषय में संस्था निर्धारण इत्यादि का विचार किया है।

किसी भी क्षेत्र में किसी ग्रन्थ विशेष एवं किसी विशिष्ट विद्वान् की उपादेयता या योगदान पर विचार करने के लिए उस ग्रन्थ या विशिष्ट विद्वान् के उस विषय के लिए महत्त्व को जानना अनिवार्य है। नागेश भट्ट ने व्याकरण की दार्शनिक परम्परा में मूल्यांशों का निर्माण किया है। व्याकरण दर्शन पर अन्य विद्वानों ने भी ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें भृंहरि एवं कौण्डभट्ट के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य विद्वानों ने व्याकरण दर्शन पर ग्रन्थ लिखे हैं। अतः एक ही विषय पर अनेक विद्वानों के अनेक ग्रन्थों के रहते हुए यह निश्चित करने के लिए कि किसके ग्रन्थ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं या किन्के सिद्धान्त उचित एवं युक्तियुक्त हैं विद्वन्मोहात्कृता ही प्रमाण मानी जा सकती हैं ?

व्याकरण दर्शन पर अनेक ग्रन्थों के विद्यमान रहते हुए नागेश जी की मूल्यांशों की प्रतिष्ठा सर्वाधिक है। मूल्यांश ही फल पाठन के व्यञ्जक में सर्वाधिक प्रचलित हो रही है। आज भी मूल्यांशोपन्यक्त सिद्धान्त यथावत् विद्यमान हैं। तीनों मूल्यांश अपने में स्वतन्त्र ग्रंथ हैं। सद्यः

तथा परमलघुमंथुणार्थं केवल संपीप नहीं है । अतः मंथुणा के तीनों संस्करणों की सार्वभौमिक प्रतिष्ठा एवं सर्वग्राह्यता को देखकर महज ही अनुमान किया जा सकता है कि मंथुणा का व्याकरण दर्शन के लिए कितना महत्त्व है ।

यद्यपि नागेश भट्ट ने पूर्ण भर्तृहरि एवं कौण्डभट्ट ने स्फोट की चर्चा स्वतन्त्र रूप से की है किन्तु नागेश जी ने सम्पूर्ण व्याकरण के विषयों की स्फोटमय दशाति हुए स्फोट का निरूपण विभिन्न दृष्टि-कोणों से किया है । तथा शब्दार्थ विचार को लेकर विस्तृत दार्शनिक चर्चा की है । अतः व्याकरण दर्शन के लिए नागेश जी की मंथुणाओं का महत्त्व-पूर्ण योगदान है ।

इसी प्रकार नागेश प्रणीत उभय शब्देन्दुशेखर प्रक्रिया व्याकरण के अप्रतिम ग्रन्थ माने जाते हैं । सिद्धान्त कौमुदी की जेब व्याख्याओं में उभय शब्देन्दुशेखरों का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है । सिद्धान्त-कौमुदी का प्रतिपदव्याख्यान वृक्ष् एवं लघुशब्देन्दुशेखर में दिया है । यह ग्रन्थ नागेश ने व्याकरण शास्त्र का सम्यक् अध्ययन करने के अनन्तर लिखा है । तथा सम्पूर्ण विषय को परिपूर्णता के साथ स्पष्ट किया है । महाभाष्य वादि व्याकरण ग्रन्थों के अध्ययन से नागेश के व्याकरण विषयक ज्ञान की जो परिपूर्णता थी उन्नी के फलस्वरूप नागेश जी ने दोनों शब्देन्दुशेखर ग्रन्थों का प्रणयन किया हुआ है ।

प्रक्रियाव्याकरण में दोनों शब्देन्दुशेखरों की उपयोगिता को देखकर यह कहा जा सकता है कि उभयशब्देन्दुशेखर नागेश जी की

प्रक्रियाव्याकरण के लिए महत्त्वपूर्ण है। शब्देन्दुशेखर के अतिरिक्त तत्त्व-
शब्दरत्न भी प्रक्रिया व्याकरण में नागेश जी का अनुपम ग्रन्थ है। एक ही
ग्रन्थ की ओर व्याख्यान विभिन्न रूप में करने में नागेश ने अपनी अनन्य सामान्य
बहुल्य की प्रकट किया है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि नागेश जी का संस्कृत
व्याकरण की व्याख्यान योगदान रहा है। जैसाकि हम पहले कह चुके हैं कि नागेश
भट्ट ने संस्कृत व्याकरण के प्रत्येक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। उन
ग्रन्थों में मिलने वाले योगदान का अनुमान तत्त्वग्रन्थों की समग्रता से
लाया जा सकता है।

जिस प्रकार व्याकरण की दार्शनिक परम्परा में
नागेशभट्ट की मञ्जुषाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है तथा प्रक्रिया व्याकरण
में दोनों शब्देन्दुशेखरों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। उसी प्रकार संस्कृत
व्याकरण में कुछ पाठों का विधान किया गया है। परिभाषा पाठ जिनमें
है महत्त्वपूर्ण है नागेश जी ने परिभाषापाठ पर भी लेखनी चलाकर परिभाषा-
पाठ में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। नागेश भट्ट का परिभाषाशेखर
परिभाषा पाठ का सर्वाधिक प्रामाणिक एवं अन्तिम ग्रन्थ है। इसके अति-
रिक्त भी परिभाषा पाठ पर अन्य विद्वानों के द्वारा लिखे हुए ग्रन्थों के
विषयान्तर होते हुए नागेश जी के ही ग्रन्थ की सर्वाधिक प्रसिद्धि देकर तो इस
ग्रन्थ से परिभाषा पाठ को मिलने वाले योगदान की बात अच्छी तरह समझ
में आ जाती है।

नागेश भट्ट परिभाषा पाठ के अन्तिम संस्कार
एवं व्याख्याता हैं। काः कुछ परिभाषाएं नागेश जी ने अपनी ग्रन्थ में और

बढ़ाकर दी हुई है जो कि उनके पूर्ववर्ती विद्वानों के ग्रन्थों में नहीं मिलती हैं। नागेश भट्ट ने परिभाषाओं की व्याख्या नए ढंग से की है जो कि उनके पूर्ववर्ती विद्वानों से भिन्न है।

इन परिभाषाओं की स्वतन्त्र रूप से आवश्यकता है या नहीं इस विषय को लेकर भीमती मुष्पा दीक्षित शोध कार्य कर रही है।

परिभाषापाठ पर लिखे गए विभिन्न विद्वानों के अनेक ग्रन्थों में है नागेश का परिभाषानुसूचक ही अपने महत्त्वपूर्ण गुणों से विशिष्टतम स्थान को प्राप्त किए हुए है।

जिस प्रकार व्याकरण की दार्शनिक परम्परा में मञ्जूषाओं का तथा प्रक्रिया व्याकरण में शब्देन्दुशेखरों का एवं परिभाषापाठ में परिभाषानुसूचक का योगदान महत्त्वपूर्ण है उसी प्रकार जटाध्यायी की परम्परा में ही लिखे गए महाभाष्य की व्याख्या उपोत का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। महाभाष्य पर कैप्ट द्वारा लिखी प्रदीप टीका के प्रतीकों को लेकर लिखी गई उपोत व्याख्या एक प्रकार से महाभाष्य का ही व्याख्यान है। कई स्थलों पर कैप्ट एवं फांजति के बीच उत्पन्न हुई भ्रान्तियों को दूर करते हुए नागेश जी ने इन दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित किया है। अतः महाभाष्य को सुदृष्टि करने के लिए केवल प्रदीप का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं है। अपितु उपोत के बिना इन दोनों का ही अध्ययन अधूरा रह जाता है।

यही कारण है कि महाभाष्य के साथ अधिकारितः प्रदीप उपोत का प्रकाशन हुआ है। यह तीनों ही ग्रन्थ परम्पर एक दूसरे के

अनुप्रासक है। महाभाष्य के सम्यग्ज्ञान के लिए प्रदीपीयते का सम्यग्ध्यान परमावश्यक है। यह इन ग्रन्थों के बालोढन से ही प्राप्त होता है।

महाभाष्य की ओर व्याख्याओं में प्रदीप एवं उपाते ही सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हैं। प्रदीप की पूर्णता उपाते के साथ ही है बिना उपाते के प्रदीप अपूर्ण ही लगती है।

उपर्युक्त विवेक से हम यह देख सकते हैं कि नागेश भट्ट ने संस्कृत व्याकरण के विभिन्न पन्नों पर ग्रन्थ निर्माण करके संस्कृत व्याकरण को महान् योगदान दिया है। प्रत्येक क्षेत्र में नागेश जी के ग्रन्थों ने संस्कृत व्याकरण को एक नवीन दिशा प्रदान की है। प्रत्येक क्षेत्र में नागेश जी ने नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जिनका अनुमोदन आज भी हो रहा है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में हमने नागेश भट्ट के प्रमुख व्याकरण ग्रन्थों को लेकर उनके व्याकरण को मिलने वाले योगदान को दिखाने का प्रयास किया है। हमने आरम्भ में ही इस बात की चर्चा की है कि संस्कृत व्याकरण की विभिन्न परम्पराएं प्रचलित हैं। मुख्य रूप से जिन्हें चार भागों में बांटा है :

- १- व्याकरण की दार्शनिक परम्परा
 - २- व्याकरण का प्रक्रिया पन्ना
 - ३- व्याकरण के कुछ पाठ
 - ४- व्याकरण का ऐतिहासिक पन्ना
- (अष्टाध्यायी परम्परा)

इन कार्यों ही परम्पराओं में नागेश्वर ने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण करके संस्कृत व्याकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस योगदान का संक्षिप्त मूल्यमापन इस निबन्ध में प्रस्तुत किया गया है। अथर्वनाम नागेश्वर के व्याकरण ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१- संस्कृत ग्रन्थ

अमरसिंह	अमरकोश चौलम्बा , वाराणसी
पाणिनि	लट्ठं पाणिनीयम् (अष्टाध्यायी) नवम संस्करण, कलमैर, वि० सं० २०४०
फाजलि	योगसूत्रम् (षट्ठीकोपेतम्) द्वितीय संस्करण, चौलम्बा संस्थान, वाराणसी, १९८२ ई०
भट्टहरि	वाक्यफलोप विवरणपत्रिका (वाराणसीय सं० वि० विद्यालयस्य सरस्वती भवन पुस्तकालये संगृहीतानां हस्तलिखित ग्रन्थसूची , दशमी भागः , १९६४ ई०)
नागेशभट्ट	वैयाकरणशिद्धान्त लघुसंग्रह चौलम्बा संस्कृत सीरिज आफिस द्वितीय संस्करण, वाराणसी १९६३

नागेशभट्ट

वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा

विशाल प्रकाशन

कुरुक्षेत्र वि०वि०, कुरुक्षेत्र

१९८५

..

वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा

वाराणसी सं० वि०वि०

वाराणसी, १९७७

कौण्डभट्ट

वैयाकरणभूषणगार

चौसम्भा संस्कृत गीरीज, आफिस,

वाराणसी, १९६६

फर्गुसॉन

व्याकरण महाभाष्यम्

(सप्रदीपोदयितम्)

नवाह्निकं प्रथमं तण्ड , पंचमं संस्करणम्

निर्णय सागर, बम्बई

१९५१

रामाज्ञापाण्डेयः

व्याकरणदर्शन भूमिका

राजकीय संस्कृत पुस्तकालयः

सरस्वतीभवनम्, काशी

१९५४

पण्डितराज जगन्नाथ

रसगंगाधर

(गुरुमर्मप्रकाशिका) निर्णय सागर, बम्बई,

१९३६

नागेशभट्ट

लघुशब्देन्दुशेखरः

(अव्ययीभावान्तोभागः)

षट्ठीकोषे प्रथमं राजसंस्करणम्

भागवत पुस्तकालय, बनारस

१९३५

पाणिनि

धातुपाठः

अष्टम संस्करणम्

वैदिक मन्त्रालय, अजमेर

१९८५

नागेशभट्ट

बृहच्छब्देन्दुशेखरः प्रथमो भागः

..

..

द्वितीयो भागः

..

..

तृतीयो भागः

वाराणसीय सं० वि०वि०, वाराणसी

१९६०

पाणिनि

गणपाठः

वैदिक मन्त्रालय, अजमेर

वि०सं० २०३८

जयादित्यशर्मा

काशिकावृत्तिः

डा० महेशदत्त शर्मा

काशिकावृत्तिपिद्धान्त कांमुषीः तुलनात्मक-

ध्ययनम्

पूना विश्वविद्यालय, पूना १९७४

नागेशभट्ट

परमलघुमञ्जूषा

प्रथम संस्करण (ज्योत्स्ना टीका)

बडोदा , १९६१

..

परमलघुमञ्जूषा

सं० डा० कपिलदेव शास्त्री

बुरुगोत्र, १९७५

नागोजिभट्ट

परिभाषेन्दुशेखर

..

परिभाषेन्दुशेखर

(तत्त्वार्थदर्श व्याख्या संहिता)

भाग १

भाण्डारकर प्राच्य विद्या शोध संस्थान,

पूना, १९६२

..

परिभाषेन्दुशेखर

(नागेश गृह्यार्थ टीका संहिता)

कालीनाथ वासुदेव

परिभाषाग्रह

अभ्युक्त

प्रतिज्ञा

पाणिनीयव्याकरणमहाभाष्यम्

(सप्रदीपोद्घोषितम्)

द्वितीय खण्डम् , द्वितीय संस्करणम्

निर्णय सागर, बम्बई , १९३५

पञ्जलि

पाणिनीय व्याकरण महाभाष्यम्
(सप्रदीपोधीतम्)

तृतीय तण्डक, प्रथम संस्करणम्
निर्णय सागर, बम्बई, १९३७

..

पाणिनीयव्याकरणमहाभाष्यम्
(सप्रदीपोधीतम्)

चतुर्थ तण्डम् , प्रथम संस्करणम्
निर्णय सागर, बम्बई , १९४२

..

पाणिनीयव्याकरण महाभाष्यम्
(सप्रदीपोधीतम्)

पंचम तण्डम् . निर्णय सागर, बम्बई
१९४५

नागेशमट्ट

प्रायश्चित्तोत्पत्तिशेखरः

मट्टोजिजीमित

मादिमनोरमा

(शब्दरत्न सञ्ज्ञिता)

द्वितीय संस्करण, चौहन्धा सुर भारती,
वाराणसी , १९८०

..

सारस्वती सुलभा

राम्पुर्णनिन्द संस्कृत वि० विद्यालयमुन्धान पत्रिका

(त्रैमासिकी) ३८ वर्ग १-२ ऊर्का , पून-मिस्वर
१९८६

भट्टोजिदीप्ति

सारस्वती सुषमा

त्रयोदश वर्ण १-४ कंठाः

फाल्गुन पूर्णिमा, संवत् २०१५

..

सारस्वती सुषमा

द्वितीयकर्णांक , दिसम्बर

१९४३ ई०

..

सारस्वती सुषमा

तृतीयकर्णांक , दिसम्बर

१९४५ ई०

..

सिद्धान्तकौमुदी

नागेशभट्ट

रूपकौटवाह

सम्पा० बी० कृष्णमाचार्य

१९४६

भट्टोजिदीप्ति

शब्दकौस्तुभ

२- हिन्दी ग्रन्थ

रमाकान्त मिश्र

व्याकरणशास्त्र का संक्षिप्त इतिहास
चौसम्पा विद्या भवन
वाराणसी, १९६७

बलदेव उपाध्याय

काशी की पाण्डित्य परम्परा
(१२०० ई० - १९५० ई०)
वाराणसी वि०वि० प्रकाशन,
१९८३

डा० रामलक्ष्मण भट्टाचार्य

पाणिनीयव्याकरण का कुशील
प्रथम संस्करण ,
इण्डोलोजिकल बुक हाउस, वाराणसी, १९६६

..

पाणिनिकालीन भारतवर्ष
(भट्टाचार्यो का सांस्कृतिक अध्ययन)

डा० रामहरीश त्रिपाठी

संस्कृत व्याकरण दर्शन

डा० वीरेन्द्र सिंह

संस्कृत अव्ययों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन
प्रथम संस्करण, इलाहाबाद , १९८४

युधिष्ठिर मीमांसक

संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास
भाग १ , द्वि० संस्करण
जयमेर, वि०सं० २०२०

- युधिष्ठिर मीमांसक संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास
भाग २ , प्रथम संस्करण
जयमेरु, २०१६ वि० सं०
- डा० रवीन्द्र कीथ संस्कृत साहित्य का इतिहास
कृ० डा० मंगलदेव शास्त्री
दि० सं० , मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली, १९६७
पुनर्मुद्रण , १९७८
- बलदेव उपाध्याय संस्कृत शास्त्रों का इतिहास
शारदा मंदिर, वाराणसी
- पण्डित रंगनाथ पाठक शकौट दर्शन
प्रथम संस्करण
बिहार राज्य भाषा परिषद्
पटना , १९६७
- रामस्वरूप शास्त्री शब्द दर्शन
प्रथम संस्करण
शारदा सदन, मुजफ्फरनगर
१९७२

३- मराठी ग्रन्थ

काशीनाथ वासुदेव जगन्नाथ

महाभाष्य (मराठी भाषानुवाद)
सप्तम भाग (प्रस्तावना खण्ड)
डेक्कन स्टुडेंट्स सोसायटी,
पुना

नारायणदाजीबा वाडेगावकर

परिभाषा-मैत्रुसैराषि (मराठी
भाषान्तर)
नागपूर
१९३६

४- शोध प्रबन्ध

डा० विद्याधर धर्माधिकारी

नागेश उनका जीवन कृतियाँ एवं
संस्कृत व्याकरण की योगदान
(शोध प्रबन्ध)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
१९६६

5. English Books

ALIGARH JOURNALS OF ORIENTAL STUDIES

(Prof. R.S.Tripathi Commemoration Volume)
Vivek Publications, Aligarh, Vol. II Nos. 1-2, 1985

- THEODOR AUFREKHTA** CATALOGUS CATALOGORUM
- Dr. G.V. Devasthali** Descriptive Catalogue of Bombay University
- P.V.Kane** History of Dharmasatra
Vol. I Poona, 1930
- Jñānāmṛta** Professor A.C. Swain Felicitation Vol.
Utkal University, Vanivihar, Bhubaneswar.
- Dr. K.K.Raja** New Catalogus Catalogorum
Madras , 1978.
- Nāgeji Bhatta** Paribhāṣaṇasāhkar Edr. F.Kielhorn
II part, Edr. of IInd Edition, KV.Abhyankar
BORI, Poona , 1960.
- George Cardona** Pāṇini (A survey of Research)
MLSD, First Indian Reprint, Delhi, 1980.
- Baldevaraj Gupta** Research in Indian Linguistics
Arian Publishing House, New Delhi, 1983.
- S.K.Belvalkar** Systems of Sanskrit Grammar
Bhartiya Vidya Prakashan, Delhi, Varanasi
IInd Revised Ed. , 1976.

6. Research Articles in English

- M.S.Bhat** Authorship of the Laghuśabdaratna
printed in H.D.Belankar Commemoration
Volume, Poona
- K.V.Abhyankar** Date and Authorship of the Śabdaratna and
Brhat Śabdaratna, printed in A.B.ORI
Vol. XXXII , Poona, 1951.
- P.K. Gode** The Relative Chronology of some works of
Nāgeji Bhatta, Printed in -Studies in
Indian Literary History Vol. III
Poona, 1966.